सोमसी

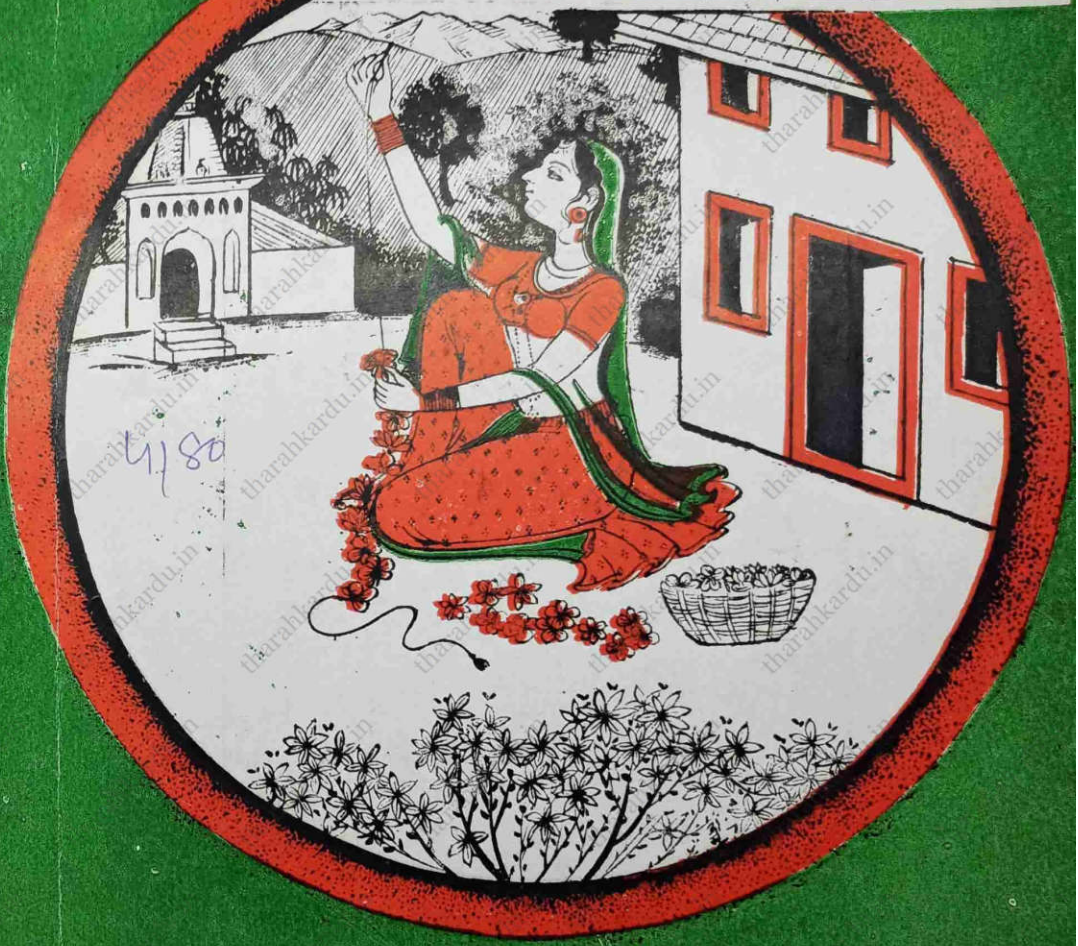

हिमाचल कला - संस्कृति - भाषा अकादमी शिमला - १

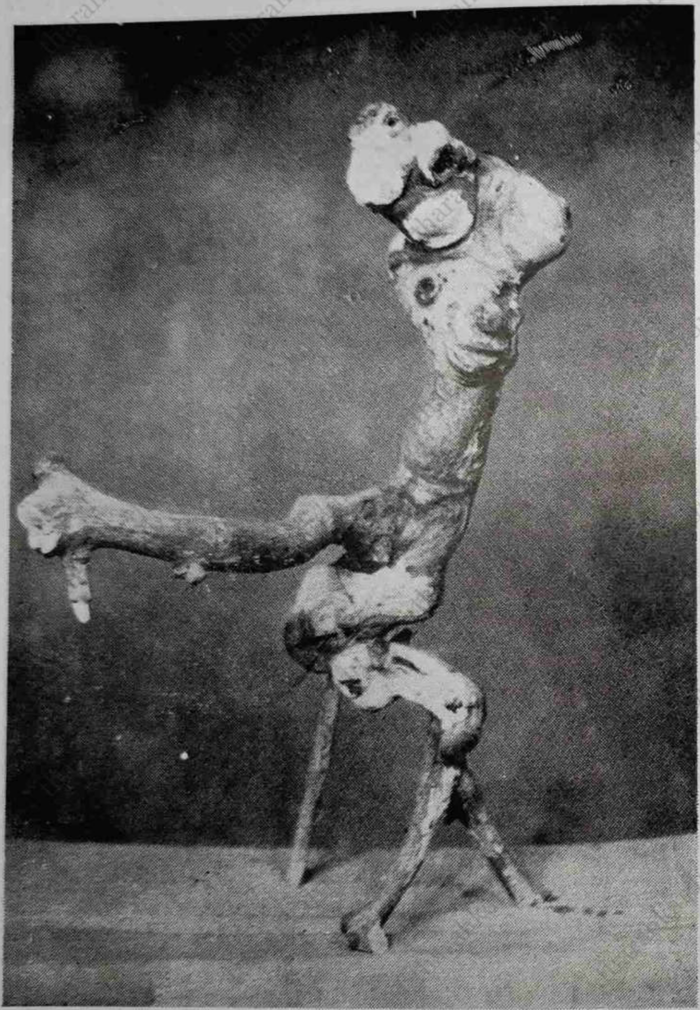

श्री किशोरी लाल वैद्य के लेख : 'कृषक कलाकार बी॰आर॰ भारद्वाज'
से सम्बन्धित (पृष्ठ 66, 68)

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 6 | अप्रैल, 1980 | अंक 2

मुख्य सम्पादक :
अध्यक्ष अकादमी
शिव कुमार उपमन्यु

सम्पादक :
मौलू राम ठाकुर

सहयोगी :
सरोज सांख्यायन

आवरण :
ओम प्रकाश

२२

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परी महल,
शिमला-171009

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	नाम लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		(i)
2.	हिमाचली में उ ऊ की ध्वनि और वर्तनी	–डा० श्याम लाल	1
3.	हिमाचल प्रदेश के काले चमकदार मृदभाण्ड	–श्री अमर नाथ खन्ना	16
4.	कांगड़ी लोक-गीतों में बिरह और मिलन गीत	–विमला कुठियाला	19
5.	कांगड़ा की 'रली पूजन' प्रथा	–वेद भूषण महाजन	28
6.	अरकी जनपद में प्रचलित लोक गीत	–श्री शंकर लाल शर्मा	32
7.	हिमाचल प्रदेश की देवी उपासना के सन्दर्भ में देवी पूजा की व्यापकता	–डा० विद्याधर शर्मा गुलेरी	36
8.	देव धरा चम्बा	–श्री खेम राज गुप्त ,सागर'	40
9.	हिमाचल में आम्र फल सम्बन्धी—शब्दावली	–श्याम कुमारी डोगरा	44
10.	कन्या से नारी जीवन का महत्व (बिलासपुर के लोक-गीत)	–श्री अमर नाथ वशिष्ठ	51
11.	कांगड़ा की लोकोक्तियों का सांस्कृतिक अध्ययन	–श्री योगेन्द्र सिंह	56
12.	कृषक कलाकार बी० आर० भारद्वाज	–श्री किशोरी लाल वैद्य	66
13.	जम्मू की पर्वतीय जातियों के उपनाम	–डा० प्रियतम कृष्ण	69
14.	बिलासपुर जनपद में गाए जाने वाले भक्ति गीत : सांस्कृतिक विवेचन	–श्री श्रीराम शर्मा	75
15.	स्वप्न फल दायिनी — देवी सिमसा	–श्री शशि कान्त शास्त्री	85
16.	हमारे तीर्थ स्थान तथा राष्ट्रीय एकता	–श्रीमती मनोरमा शर्मा	88
17.	कांगड़ा घाटी के मेले	–श्री रत्नलाल चौधरी 'प्रभाकर'	90
18.	प्राचीन नगर पांगणा	–श्री सुख राम हिंगोराणी	97

★●★

सम्पादकीय

मनन, चिन्तन और स्मरण मनुष्य के व्यक्तित्व के नैसर्गिक गुण हैं। मानवीय मन की ये तीन शाश्वत शक्तियां हैं। मनुष्य मन से किसी वस्तु या भाव को ग्रहण करता है, बुद्धि से उसे समझता है और चित्त से उसे याद रखता है। इन तीन स्वाभाविक अन्तर्जात गुणों के कारण मनुष्य का मस्तिष्क-प्रभावी शरीर अच्छे-बुरे, सत्-असत् गुण-दोष, शुभ-अशुभ, हर्ष-शोक, जय-पराजय के विविध अन्तर्द्वन्द्वों का युद्ध खेल है। ऐसे अन्तर्द्वन्द्वों से संत्रस्त मानव जब कभी अपने चारों ओर किसी असाधारण शक्ति को देखता है तब उस शक्ति के प्रति अनायास ही उसकी श्रद्धा या भीति उत्पन्न होती है। साधारण स्थिति से भिन्न जो भी दृश्य मनुष्य देखता है और जो उसकी संकल्पना की परीधि से बाहर होता है उसे वह अलौकिक की संज्ञा देता है और अलौकिक एवं आधिदैविक शक्ति के आगे उसका सिर तुरन्त झुक जाता है। मनुष्य को उनसे सुख की प्राप्ति और दुःख की समाप्ति की कामना होती है। मानव मन के विकास के विभिन्न चरणों में विभिन्न वस्तुएं और स्थितियां मानव के लिए अलौकिक और आधिदैविक रही हैं। मानव सृष्टि के आरम्भिक चरण में मानव मन के लिए ये पृथ्वी और आकाश भी उसकी समझ से बाहर थे। अतः धरित्री को उसने माता और द्यौः को पिता कहा। सूर्य का प्रकाश और ताप, वायु का सतत् प्रचलन और आकस्मिक प्रकोप, अग्नि की उष्णता और प्रचण्डता उस समय के मानव के मस्तिष्क से बाहर की वस्तुएं थी, अतः ऐसी अवधारणा को उसने देव का नाम दिया और उन्हें अग्नि-देव, सूर्य देव आदि कहा। वहीं से देव-भावना का आरम्भ होता है।

देव शब्द संस्कृत धातु दिव से सम्बन्धित है। इसके अनेक अर्थ हैं—खेलना, क्रीड़ा, प्रकाश, प्रशंसा करना, आनन्द मनाना, जीतने की इच्छा करना, मस्त होना, चाहना आदि। परन्तु इन अर्थों में भी रक्षा, प्रकाश, जीतने की इच्छा भाव में ही देव शब्द को प्रधानता मिली है। किसी दिव्य-शक्ति को देव कहना बड़ा स्वाभाविक है। चमत्कार और भय से व्याकुल हुआ व्यक्ति किसी ऐसे दृष्य को देख कर उसके सामने नतमस्तक खड़ा होकर हाथ जोड़ता है और भय से संत्रस्त होकर उस चमत्कारी शक्ति को रक्षा के लिए पुकारता है। इस प्रकार देवभावना के पीछे दो स्पष्ट और विशिष्ट मनोकामनाएं काम करती हैं—एक यह भी भय और संकट से मुक्ति मिले और दूसरे यह कि सुख-सुविधा और समृद्धि प्राप्त हो। स्पष्टतः चमत्कार और भय की मनःस्थिति में देवभावना का उद्भव हुआ और सुख-समृद्धि की इच्छा से उसका विकास हुआ। आदिकाल में मनुष्य ने जब कभी ऐसे सांसारिक पिंड को देखा जिसकी सत्ता उसकी समझ से बाहर थी उसे उसने महान् शक्ति माना। वह शक्ति अपने आप में या उस शक्ति का संचालक अवश्य ही साधारण व्यक्ति एवं वस्तु से ऊपर था और इसलिए उसकी सत्ता के आगे हाथ जोड़ना स्वाभाविक था। आदिकाल में मनुष्य

उन्मुक्त प्रकृति के खुले प्रांगणा में विचरण करता था । उसे चमत्कृत और भयकान्त करने वाली वस्तुएं और घटनाएं प्रकृति में ही विद्यमान थीं । ऐसी वस्तुओं और घटनाओं से रक्षा के लिए जिस शक्ति का मानव ने आह्वान किया उसे उसने देव कहा । देवता शब्द में 'देने' की भावना अन्तर्निहित है चाहे वह रक्षा करता है या सुख-सुविधा प्रदान करना । अतः ऐसी शक्ति से आदि मानव ने या तो भय से रक्षा मांगी है या अभीष्ट पदार्थ का दान मांगा है । रक्षा करना या इच्छा पूरा करना देवता के चरित्र की प्रमुख विशेषता है ।

संसार भर के मनुष्यों की चित्तवृतियों में एक विशिष्ट समानता है । मानव विश्व के किसी भी कोने में रहता हो वह चमत्कार की ओर आकृष्ट होता है और भय से दूर भागता है आकर्षण में उसके विकास के बीज निहित हैं, और भय में उसकी सावधानी से अंकुर प्रस्फुटित हैं । चमत्कार की परिकल्पना में भय की भावना स्वाभाविक है । चमत्कार की ओर आकर्षण और भय से पलायन के अन्तर्द्वन्द्व में जहां कहीं समायोग का स्थापत्य हुआ वहीं देवभावना ने जन्म लिया है । मनुष्य के विकासशील मन ने जब कभी चमत्कार को पलीभूत करने का प्रयास किया है तभी उसने उसमें अन्तर्निहित भय के समाधान के लिए अपनी बुद्धिगम्म शविन को निहारा है । प्रागैतिहासिक मानव के लिए बड़ी-बड़ी चट्टानें, महाकाय वृक्ष एव पर्वत महान शक्तियां थीं । उसने उन्हीं को देवता माना और उसकी पूजा करके कष्ट से मुक्ति और इष्ट की प्राप्ति मांगी । ऋग्वेद के अनुसार आर्येतर जातियां जल और अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की पूजा करती थीं । उसी समय नाग पूजा और पशु पूजा भी प्रचलित थी । वृत्र नामक नाग इन्हीं आर्येतर लोगों का देव था । समाज में कभी भी दुरात्माओं की कमी नहीं रही है । दुर्जन जीते जी दूसरों को तंग करते रहे हैं । लोग उनसे भयभीत होते हैं। डर के मारे उनके आगे हाथ जोड़ते हैं । उनके मरने पर उनकी असन्तुष्ट और पथभ्रष्ट आत्माए स्वाभाविक रूप से सज्जन पुरुषों और कोमल हृदयों को सताती रही हैं । इसी समाज में दुर्जनों से लोहा लेने के लिए या उन्हें नष्ट करने के लिए वलशाली सज्जन पुरुष भी हुए हैं । दुराचारी को नष्ट करने के बाद उनकी दूसरों को सताने वाली दुरात्माओं को भी ऐसे सशक्त सज्जन पुरुषों ने शांत कराया है । समाज इतना कृतघ्न नहीं है कि जिसने उसे किसी कष्ट से, दुराचारी या दुरात्मा से मुक्त किया हो उसे वह शीघ्र भूल जाए । निस्सन्देह ऐसे महान पुरुष का लोगों ने सम्मान, आदर और सत्कार बाद में पूजा में बदल गया । इस प्रकार समाज में पहले अतिप्राकृतिक एवं आलौकिक शक्तियां पूजा में आईं । फिर दुराचारी की भी पूजा होने लगी । इसी में भूत, प्रेत, यज्ञ दानव की पूजा शामिल है । तदनन्तर जिन महापुरुषों ने आलौकिक शक्तियों को शांत कराया या दुरात्माओं का अपसारण किया वे भी स्वाभाविक रूप से पूजा के पात्र बने । घर, वृक्ष या चित्र उनके प्रतीक समझे जाने लगे और समय बीतने पर उनकी मूर्तियां बनाई गईं । प्रतीक या मूर्ति को स्नान कराया जाता था और उन पर पत्र, पुष्प, फूल-मालाएं चढ़ाई जाती थीं । उन्हें वस्त्राभुषणों से अलंकृत करके सिन्दूर का लेप तथा रक्त-चन्दन किया जाता था । । उन्हें भोजन चढ़ाया जाता था और धीरे-धीरे पशु बलि भी दी जाने लगी ।

—एम० आर० ठाकुर

हिमाचली में उ ऊ की ध्वनि और वर्तनी

–डा० श्यामलाल

हिमवत्सिन्धुसौवीरान् ये जनाः समुपाश्रिताः।
उकारबहुलां तज्जस्तेषु भाषां प्रयोजयेत् ॥
(नाटयशास्त्र १७, ६२)

प्रस्तुति :

भरतमुनि की इस उक्ति में दर्शित हिमालयवर्ती जनपद की भाषा में उ ध्वनि का अधिकाधिक प्रयोग सफलतापूर्वक आज भी अक्षुण्ण रूप से चला आ रहा है। प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा में भाषा में शनैः शनैः विकार आता गया, परन्तु उ ध्वनि की प्रमुखता सदैव अभी तक बनी हुई है।

अकेले में उ या ऊ का व्यवहार अभिधा, लक्षण और व्यंजना वृत्ति से अनेक हाव भावों का द्योतक है। उ का साधारण अर्थ तनिक ध्यान आकर्षण करना है। नाक सिकोड़ कर या भौं चढ़ाकर उ या ऊ के उच्चारण से हीन या तुच्छ भाव का आभास होता है। उ को तनिक लम्बा बोलने से डांट डपट से निषेध का भाव प्रतीत होता है।

ऊ के उच्चारण से गम्भीर और मौन रहने का अभिप्रायः है। यदि ऊ का उच्चारण आवेश में पूर्णतः किया जाये तो ऊ का गम्भीर अर्थ शंखनाद का अनुकरण है यह शंखनाद मन्दिर में अर्चना या पूजा आरती की ध्वनि नहीं अपितु शरीर मन्दिर से प्राण पखेरू उड़ाने वाली शंख ध्वनि का अनुवाद सा है। सुजानपुरी बोली में खेल में हारा पीटा बच्चा अपने मारने पीटने वाले के प्रति आक्रोश को ऊ के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करता सुना गया है— "जा, तेरी ऊ ऊ होई जाए" संगी साथियों को सुनाने के लिए इसका भाष्य इस प्रकार करता है—"ध्यागा जो शंख बज्जी जाए" अर्थात् रात ऐसी बीते कि तड़प तड़प कर प्राणान्त हो जाए और प्रातः परलोक यात्रा का नाद शंख ध्वनि से आकर्णित मिले। इस प्रकार ऊ ऊ ध्वनि पराजय, हानि, क्रीड़ा समाप्ति, रंग में भंग और निधन का मुहावरा बन गयी है। ऊ ऊ कहने मात्र से ही क्रीड़ा में हार का संकेत मिल जाता है।

हिमाचल प्रदेश में आसपास की बोलियों में काकु ध्वनि के तारतम्य से कितने ही अर्थ निकलते होंगे—यह क्षेत्रीय अनुसन्धान में रोचक विषय सिद्ध होगा। हिमाचली बोलियों में सर्वांगीण विकास में उ ध्वनि का इतना व्यापक क्षेत्र है जिसका वर्णन कोशगत विविध प्रक्रिया से भी सम्भव होने में सन्देह है। जीवन की दिनचर्या में व्यवहृत कतिपय शब्दों का उल्लेख सामान्य

परिचय के लिए यहां आवश्यक जान पड़ा है। शब्द की आदि और मध्य स्थिति में उ और ऊ के उदाहरण अनेक हैं परन्तु विस्तरभिया यहां शब्द की अन्त में स्थिति वाले ऊ के ही उदाहरण व्यावहारिक प्रसंग में प्रस्तुत हैं।

१. **खानपान :** दतयाल्लू, संझयाल्लू, पोल़ू, पकोल़ू, संचोल़ू, भटूरू, ऐंकल़ू, दुद्धू, खीरू, दहूं, घीऊ, खीचड़ू।

२. **व्यंजन :** खोहरू, रेहड़ू, कढ़ू, भुज्जू, कचाल़ू, पत्रोड़ू।

३. **फल :** सेऊँ, दाड़ू, आड़ू, काकड़ू, मिट्ठू, लीम्बू, जामणू।

४. **पात्र :** हाण्डू, पारू, चरोट्टू, थाल़ू, गड़बू, ग्लास्सू, कुज्जू, टूट्टू, कूण्डू, डून्नू, पतल़ू, पतील्लू, दधून्नू, छक्कू, पेड़ू, किनूं, ऋण्डोल़ू पण्याणू, नलोशू, हटड़ू, कड़छू।

५. **कृषि :** लाहड़ू, सुआड़ू, पट्टू, संगणू मंगणू, रेट्टू, भरोट्टू, भू, गुल्लू।

६. **उपकरण :** थोहड़ू, कुदाल़ू, झामड़ू, बैंहल्लू, तैंन्थू, कुहाड़ू।

७. **इन्धन :** गोश्टू, गोट्टू, लकड़ू, काठू, गारू, चुहड़ू, मुहड़ू।

८. **पशु :** कट्टू, बच्छू, बैंहड़ू, भेड्डू, छेल्लू बकरू, सैंहड़ू, कुत्तू, बिल्लू।

९. **पक्षी :** तोत्तू, कुकड़ू, चिड़ू, पींज्जू, तितरू, कूक्कू, घुटारू।

१०. **कीट :** कीड़ू, कण्डू, टिड्डू, मकोड़ू, चटकोड़ू, पिस्सू, मौंगणू, चीडणू, जीज्जू, माक्खू, सीत्तू।

११. **वर्ण नाम :** नील्लू, गोरू, भूरू, काल़ू, बसन्तू, हरू, गेरू।

१२. **वस्त्र :** झग्गू, टोप्पू, पट्टू, धाट्टू, थीप्पू, कुर्तू, सुथणू, चादरू, खलड़ू, चोल़ू, डोरू, टल्लू, थैल्लू, खिन्धू, खन्धोल्लू, लफोट्टू गाद्दू मिट्टू।

१३. **आभरण :** बाल़ू, कण्ठू, कड़ू, कगणू, घुंगरू, घण्टू, टिकल़ू, बिन्दल़ू, सनांगणू।

१४. **अंग :** जान्नू, हत्थू, पैरू, ताल़ू, हड्डू, लबड़ू, हाखड़ू, मुथू, टूण्डू मुण्डू।

१५. **रोग :** ताप्पू, गुक्खू, चरड़ू, स्रोड़ू, न्हेरनू, फोड़ू, पीड़ू, सीत्तू।

१६. **संस्कार :** दुद्धू, भत्तु, खीरू, जमाल़ू, जनेऊ, जगेत्तू, प्रोहतड़ू, स्राधड़ू, चबखंड़ू जैं पूजू।

१७. **वाद्य :** बंसरू, धैंन्तु, धैंन्तड़ू, ढोलकू, डफल़ू, डमरू, थाल़ू, छैंणू।

१८. **हर्ष-उल्लास :** तुरू तुरू, कू कू, हू हू, टुणू टुणू।

१९. **शोक-मोह :** ऊ ऊ, रूं रूं, चूं चूं, झू झू, थू थू।

२० **आवेश-उक्ति :** जीहद्दू ही तू जीहद्दू, जीहद्दू रऊ तौ जीहद्दू रऊ सऊ 'जिद्द है तो जिद्द ही सही'। आउदा गउदा, खादूरा पीत्तूरा।

२१. **कला :** लीखणू, लीपणू, ऐपणू, हसगू, खेलणू।

२२. **सम्बन्ध :** भाऊ, भतीज्जू, नान्नू, मास्सू, ताऊ, माम्मू, चाच्चू, बाप्पू, माऊ, बू।

२३. **व्यक्ति नाम :** लाल्लू, कास्सू, नीरू, रोणकू, गुड्डू, मल्लू, किस्नू, बर्फू, मित्तू, बिट्टू, दित्तू, दान्नू, झाऊं, हीम्मू, सैल्लू।

२४. **विकलांग** : टीरू, काणू, लंगड़ू, लूल्लू, फित्थू, फीन्नू, जल्लू, पोढू, ऐनू, पैंणू, जोंड़ू ।

२५. **वार-नाम** : स़ुआरू, मंगलू, बीरू, ब्रेबतू, सुक्रू, सनीचरू ।

२६. **मास-ऋतु नाम** : चैत्रू, बसाक्खू, हाड़ू, सौणू, कात्तू, मघेरू, माग्घू, फगणू, सीत्तू, वसन्तु, हेम्मू ।

२७ **स्थान नाम** : महाशू, कुल्लू, बिशाऊ, बड़ू, गल़ू, बलोट्टू ।

२८. **सर्वनाम** : कू, कुथ्, इत्थू, जित्थू, तित्थू, एऊ, तेऊ, हऊं, मूं, अप्पू ।

२९. **प्राकृतिक वातावरण** : हिऊं, मेग्घू, घोबड़ू, बूं, सीऊं (सीमा), टिल्लू, ढांगू, रिहड़ू, नाल़ू, कुआल़ू ।

३०. **विशेषण** : जाव़ू, भगतू, तारू, मारू, गभरू, छोटू, निक्कू, गीठू, मीठू ।

३१. **क्रिया पद** : पीऊ, जीऊ, बोलू, हौसू, उठू, शाधू, आऊ ।

इस प्रकार अन्य सामाजिक, व्यावहारिक आदि श्रेणियों में ऊ की महिमा पाई जाती है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए शब्द कोश सहायक होगा ।

१. ध्वनि विचार :

उ और ऊ की ध्वनि शब्द के आदि, मध्य और अन्त में बहुविध सूक्ष्म रूप लिए हुए है। वक्ता के उच्चारण की विशेषता के कारण बलाघात, उच्च, मध्यम, ह्रस्व स्वर आदि का अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय है । यहां केवल प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है ।

१.१ उ—ध्वनि :

उ पश्च, निम्न—उच्च ह्रस्व स्वर है। उ के उच्चारण में ओंठ गोल होते हैं। ध्वनि शिथिल होती है। मुँह सिकुड़ने लगता है। जीभ आगे बढ़ती है। जीभ का अग्रभाग अग्रदन्तों की निचली पंक्ति से टकरा कर तनिक ऊपर उठता है ।

शब्द के आदि में उ की ध्वनि का व्यवहार इस प्रकार है :—

उक, उक्खल 'उखली', उठ, उड़, उड़क ।

मध्य स्थिति :

कुर, 'अंकुर', मुल 'मोल', हुण 'अब', मुसणा 'चोरना', टुक, तुड़क, जुग, भुक्ख, रुक्ख, गुट ।

[उ़] आ से पूर्व उ की ध्वनि तनिक कम पड़ जाती है। ऐसे अघोषी उ के उदाहरण इस प्रकार हैं :

उ़आन 'कमरा', जुआन,, सु़आन 'एहसान', कु़आल़ 'पर्वतारोहण में प्रस्तर मार्ग' गु़आल़, तु़आर, 'उतार, रविवार'।

[उ़] नासिक्य वर्णों से पूर्व उ के उच्चारण में जीभ तनिक चंचल हो जाती है। उ के ऊपर अनुनासिकता छा जाती है :—

खुङ्ग, टुङ्ग 'लटक', गुञ्ज, मुञ्ज, कुण 'कौन', सुण, घुन, पुन, गुम, छुम ।

१.२ उ – आगम :

—आ प्रथम प्रेरणात्मक प्रत्यय के जुड़ने पर धातु में स्वर का परिवर्तन अ में हो जाता है और द्वितीय प्रेरणार्थक में आ से पूर्व उ आ आगम हो जाता है, जैसे सुख में प्रथम प्रेरणार्थक —आ

लगने से उ का लोप होकर सखा, सखाणा होता है। द्वितीय प्रेरणार्थक रचना में –आ से पूर्व –उ– जुड़ कर सखुआ, सखुआणा बन जाता है।

व्यक्ति विशेषण और मन्द उच्चारण में पहला उ भी सुरक्षित रहता है, पर इसका उच्चारण आभास मात्र रहता है, जैसे सुखुआणा, चुकुआणा, रुसुआणा, सुटुआणा आदि।

—उ आ प्रेरणार्थक प्रत्यय द्वारा रूप रचना इस प्रकार है :—

अर्थ	मूल	प्रथम	द्वितीय
	–उ–	–आ	–उ आ
पीटना	कुटणा	कटाणा	कटुआणा
उठाना	चुकणा	चकाणा	चकुआणा
काटना	मुच्छणा	मछाणा	मछुआणा
रूठना	रुसणा	रसाणा	रसुआणा
लूटना	लुटणा	लटाणा	लटुआणा
सूखना	सुकणा	सकाणा	सकुआणा
फेंकना	सुटणा	सटाणा	सटुआणा

१.३ उ –विपर्यय :

उ की स्थिति शब्द के आदि में बड़ी कोमल है। बलाघात के कारण यह स्थिर नहीं रहता है और निकटवर्ती व्यंजन में अपनी स्थिति बना लेता है, जैसे उगलना में उ आरम्भ में हट कर ग के उपरान्त होकर गुलणा की रूप रचना करता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखिए :—

पुआसना 'उपासना'; खुआड़ना 'उखाड़ना'; ठुआणा 'उठाना'; डुआणा 'उडाना'; जुआड़ 'उजाड़'; घुआड़ 'उघाड़'; चुआट 'उचाट'; छुआल 'उछाल्'; डुआर 'उडार'; डुआऊ 'उडाऊ'; तुआर 'उतार'; तुआंह 'उतांह–वहां'; दुआस 'उदास'; दुहार 'उधार'; पुआ 'उपाय'; पुआधी 'उपाधि'; फुआण 'उफान, बुटणा 'उबटना'; बुआल् 'उबाल।

१.४ परिवर्तन व > उ :

संयुक्त व्यञ्जन वाले शब्दों में व का स्थान उ ने ले लिया है। स्वाद शब्द में व के स्थान में उ का उच्चारण होने से सुआद बन जाता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हैं :—

दुआर 'द्वार', सुफणा-सुपना, 'स्वप्न' गुआली, गुआला 'ग्वाला', जुआलामुखी 'ज्वालामुखी', दुआदसी 'द्वादशी', धुजा 'ध्वजा', जुआर 'ज्वार', तुरत 'त्वरित'।

विदेशी शब्दों में भी उच्चारण की यही परम्परा अपनाई गई है :—

जुआब 'जवाब', सुआर 'सवार', तलुआर 'तलवार', खूनखुआर 'खूनख़्वार', खज्जलखुआर, लुआणा 'लवाणा', दुआत 'दवात', गुआह 'गवाह', सुआल 'सवाल' खुआजा 'ख़्वाजा'।

—वन्,–वान्,–वानी प्रत्ययान्त शब्दों में व का परिवर्तन उ में मिलता है, यथा भगवान् का उच्चारण भगुआन किया जाता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हैं :—

बिदुआन-बदुआन 'विद्वान्', धनुआन 'धनवान्', बलुआन 'बलवान्', पकुआन 'पकवान', हथुआण 'हाथीवान्', पलुहाण-पलुआण 'पहलवान', पलुहाणी-पलुआणी 'पहलवानी'।

विदेशी शब्दों में इसी अनुरूप ब का परिवर्तन उ में मिलता है, यथा :—

बगुआण 'बागबान', बगुआणी 'बागबानी', दरुआण 'दरबान'।

अखबार के लिए खुआर का व्यवहार भी सुनने में आता है।

—वां प्रत्ययान्त शब्दों में भी ब का परिवर्तन उ में मिलता है, यथा—कटुआं 'कटवां', जुड़ुआं 'जुड़वां', छंटुआं 'छांटवां', टुटुआं 'टूटवां'।

संख्यावाचक शब्दों में क्रम दर्शाने में व के स्थान में उ का व्यवहार पाया जाता है :—

पंजुआं 'पांचवां', पंजुई 'पांचवीं', छोउआं 'छेउआं' सतुआं, अठुआं, ग्यारुआं, सोल़ुआं, बीउआं, सठुआं, सोउआं आदि क्रमवाचक।

अंशवाचक गणना में भी व के स्थान में उ का व्यवहार है, यथा—सुआ, सुआई, 'सवा, सवाई'।

१.५ ओ > उ :

प्रत्यय संयोग में शब्द के मूल रूप उ का परिवर्तन ओ में पाया जाता है। संख्यावाचक शब्दों में दुक्का, दुक्की, दुक्कड़ में दो के ओ का परिवर्तन उ में हो गया है।

१.६ उ > ओ

उ का परिवर्तन ओ में नाम और धातु की रूप रचना में मिलता है :—

दुध	दोधला	दोधली	दोद्धी	'दूध देने वाला'
सुध	सोध	सोधणा	सोधणी	'शोध'
तुल	तोल	तोलणा	तोल्ला	'तौल'
चुड़	चोड़	चोड़्	चोड़ा	'टपक'
मुड़	मोड़	मोड़ना	मोड़ा	
मुच्छ	मोछ	मोछणा	मोच्छा	'टुकड़े करना' (वृक्ष आदि)

१.७ उ – लोप :

आक्षरिक प्रणाली में यदि दूसरे या तीसरे अक्षर में स्वर की दीर्घता हो तो पहला अक्षर बलहीन होकर अपनी सत्ता खो देता है। बलाघात के कारण शब्द के आदि में उ का व्यवहार नहीं होता है। मन्द उच्चारण या ध्यान पूर्वक प्रसंग में उ का तनिक आभास मिलता है, यथा उदयापन में दयापन ही अधिक सुनाई देता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हैं :—

पकार 'उपकार'; पचार 'उपचार'; पजाऊ 'उपजाऊ'; पदेस 'उपदेश'; पद्रव 'उपद्रव'; पराल्ला 'उपराला'; बास्सी 'उबासी'; मीद-मेद 'उम्मीद'; चक्का 'उचक्का'; छाल 'उछाल'; जागर 'उजागर'; मूमन 'उमूमन' सूल 'उसूल' प्रन्त 'उपरान्त'; मछाणा 'उमगाना'; चेड़ना-'उचेड़ना'; घेड़ना 'उधेड़ना'।

मध्य उ – लोप :

शब्द की मध्य स्थिति में उ लोप के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

ककर्म 'कुकर्म'; कठार 'कुठार'; कदिन 'कुदिन'; कबेल 'कुवेला'; सबेल 'सुवेला'; कनां 'कुनाम'; कध्याड़ा 'कुदिन'; कलोचनी 'कुलोचनी'; सलोचना 'सुलोचना'; सभद्रा 'सुभद्रा'; सदामा 'सुदामा'; साब्बण 'साबुन'; खमार 'खुमार'; सलूक 'सुलूक'; ठाकर 'ठाकुर'; पजारी-'पुजारी'; प्रोहत 'पुरोहित'; सभास 'सुभाष'; सणसाण 'सुनसान'।

१.८ अन्त स्थिति :

शब्द की अन्त स्थिति में उ का व्यवहार नहीं पाया जाता है। मूल उ का उच्चारण उ तथा ऊ के मध्य पाया जाता है यथा—गुरू, भानू, तालू, कुरू, पाण्डू, मधू, साधू, बन्धू।

लिखने में परम्परागत व्यवहार से इन रूपों की रक्षा की जाती है यथा—गुरु, भानु, तालु, कुरु, पाण्डु, मधु, साधु, बन्धु।

कई ऐसे उदाहरण हैं जहां अन्तिम उ का लोप पाया जाता है यथा :—

रित 'ऋतु'; साध 'साधु'; गुर गुरु (गुरु पीर)'; गुरबाणी 'गुरुवाणी'; गुरमत, गुरदीप, गुरसाध आदि।

२. ऊ – ध्वनि विचार :

शब्द के आदि, मध्य और अन्त में ऊ के बहुविध प्रयोग मिलते हैं। प्रसंगवश दीर्घता में अधिकता और न्यूनता के रूप पाये जाते हैं।

शब्द के आदि में ऊ दीर्घ रूप में इस प्रकार है :—ऊ, ऊत, ऊच, ऊझू, ऊट, ऊधो, ऊरी।

शब्द के मध्य में ऊ के उदाहरण इस प्रकार हैं :—सूत, कूच, छूत, जूट, घूट, तूत, गूण, घूड़, लूत।

शब्द के अन्त में एकाक्षरी ऊ के रूप इस प्रकार हैं :—कू 'कहां', झू 'मत', थू, ठू, बू 'फूफी', भू 'भूसा', रूं 'रूई', सू 'प्रसव'।

द्वयक्षरी में ऊ के उदाहरण इस प्रकार हैं :—नूरू, भूरू, ऊझू बूझू, ठूठू, डून्नू 'दोना'।

२.१ ऊ –ध्वनि :

ऊ पश्च, उच्च, दीर्घ स्वर है। इसके उच्चारण में ओंठ सर्वथा गोल हो जाते हैं। ऊपर का ओंठ नासिका विवर तक पहुंचने लगता है। कपोल सिकुड़ने लगते हैं। जीभ का अग्रभाग अग्रदन्तों की निचली पंक्ति में पीछे रुक जाता है।

[ऊ̣] स्वर से पूर्व ऊ के उच्चारण में ओंठ तनिक आगे बढ़ते हैं, यथा :—
भाऊआ, ताऊए, पुचूआ, टुणूओ, भुरूए।

[ऊ̣] ऊ के उच्चारण में नासिक्य वर्णों से पूर्व जीभ की चञ्चलता और अनुनासिकता पायी जाती है :—

कूण 'कोना', गूण, फून, जून, धूम, हूम 'घुटन'।

[ऊ] शब्द के अन्त में ऊ की दीर्घता उ से तनिक अधिक होती है :—
खाऊ, गुआऊ, ताऊ, नाऊ, माऊ, म्यांऊ, देऊ 'देवी'।

२.२ ह्रस्वता :

प्रेरणार्थक क्रिया रूपों में ऊ ह्रस्व हो जाता है, यथा :—

	–ऊ–	–उ–
'जनना'	सूणा	सुआणा
'धुनना'	ध्रूणा	ध्रुआणा
'खींचना (पत्ते)'	भ्रूणा	भ्रुआणा
'दुहना'	दूहणा	दुहाणा
'ठोसना'	तूहणा	तुहाणा
'छूना'	छूणा	छुहाणा

प्रेरणार्थक क्रिया में ऊ का परिवर्तन अ में हो जाता है और द्वितीय प्रेरणार्थक रूप में आ के पूर्व उ का आगम होता है। यथा–चूसणा के प्रथम प्रेरणार्थक रूप में ऊ का परिवर्तन आ में होने से चसाणा रूप है और द्वितीय प्रेरणार्थक में -उ आ- का संयोग होने से चसुआणा रूप है।
अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं :—

अर्थ	मूल –ऊ–	प्रथम –आ–	द्वितीय –उ आ–
चूरा करना	चूरना	चराणा	चरुआणा
पूजना	पूजणा	पजाणा	पजुआणा
पूरा करना	पूरना	पराणा	परुआणा
फूंकना	फूकणा	फकाणा	फकुआणा
सूत लगाना	सूतणा	सताणा	सतुआणा

२.३ परिवर्तन ऊ > ओ

हिमाचली में परसों के लिए परसी, परसू, परसूं, परशूं बोला जाता है। विशेषण रचना में ऊ का परिवर्तन ओ में पाया जाता है। यथा—परसोक्का 'परसों होने वाला' समान कक्ष में कलोक्का, कलोक्णा 'कल होने वाला' का प्रयोग भी मिलता है, परन्तु आज के लिए अजका, अजकणा, अजकणी प्रयोग मिलता है। कहीं अजोक्का अजोक्णा भी सुनने में मिलता है। इसी प्रकार चौथ के लिए चौथका, चौथकणा प्रयोग मिलते हैं।

२.४ ओ > ऊ

संख्यावाचक शब्द में प्रत्यय के संयोग में ओ का विकार ऊ में हो जाता है। यथा दो के साथ–आ प्रत्यय जुड़ने से दूआ रूप होता है जिसका अर्थ दूसरा है।
इसी प्रकार अन्य रूप हैं :—

दूई 'दूसरी', दूहरा 'दोहरा', दूहरी 'दोहरी'। इसी समानता में कूहरा, कूहरी 'इकहरा, इकहरी' के अर्थ में प्रयुक्त हैं।

३. समास रचना

उ और ऊ वाले शब्दों की समास रचना में कतिपय विशेषताएं हैं। कुछ समस्त पदों में उ और ऊ की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता है, यथा :—

उट्ठण-बौहण, 'उठ बैंठ', उड़ो-उड़ी, उड़क-पिद्दू, उन्नी-इक्की 'उन्नीस-इक्कीस', उन्नी-बीह, 'उन्नीस-बीस', ऊंची-ईंची 'उधर-इधर से', ऊझू-बूझू 'बुझारत'।

ऊच, ऊच्चा शब्द ऊंचा के अर्थ में हैं। समास रचना में इन शब्दों का ऊ ह्रस्व हो जाता है, यथा—

उच-सुच, उच-नीच, उच-नीठ 'ऊंचा-नीचा', उच्चा-लम्मा, उच्चण-गिट्टी 'पांच गिट्टी का खेल.

सम्बन्धवाचक शब्दों की समास रचना में पूर्वपद के अन्तिम और उत्तर पद के प्रथम व्यंजन का लोप हो जाता है, परन्तु इसमें विद्यमान उ का लोप नहीं होता है। उदाहरण स्वरूप नणान–पुत्तर 'ननद-पुत्र' में पूर्वपद में-आन और उत्तर पद में प–का लोप होने से समस्तपद नणुत्तर बनता है।

इसी प्रकार अन्य सम्बन्धवाचक शब्दों की समास रचना के उदाहरण हैं :—

देर–पुत्तर	'देवर का पुत्र'	=	दरूत्तर–द्रुत्तर
सौक्कण-पुत्तर	'सपत्नी का पुत्र	=	सकुत्तर–स्कुत्तर
जेठ–पुत्तर	'ज्येष्ठ का पुत्र'	=	जठुत्तर

४. वाक्यविचार

वाक्य रचना में मात्रा, बलाघात आदि से मन्द और शीघ्र उच्चारण में उ और ऊ के स्वरूप में स्थान और प्रयत्न में तनिक भिन्नता आ जाती है, यथा :—

गुआर सुआरी तुआरी 'गंवार सवारी उतार दी'।

रिड़ूए गास छेल्लू आऊदा 'पर्वतशिखर पर मेमना आया'।

गोरूए काल्ूए इत्थू ओत्थू छूणा 'गोरे काले ने इधर उधर छूना है'।

इन वाक्यों का उच्चारण मन्द गति में किया जाय तो उ और ऊ की स्थिति स्पष्ट रहती है। शीघ्रता या आवेश मे दो स्वरों के संयोग में उ का उच्चारण व के निकट हो जाता है। गुआर सुआरी को ग्वार स्वारी शीघ्रता में बोला जाता है।

बलाघात में दो स्वरों के संयोग में ऊ का उच्चारण उ जैसा सुनाई देता है :—

रिड़ुए गास छेल्लू आऊदा।

गोरुए काल्ुए इत्थू ओत्थू छूणा।

वाक्य में आदि शब्द के ऊ में बल प्रधान रहता है :—

ऊत, पूत, सपूत, कपूत, कबूत्तर, कबूतरी में बल की प्रधानता ऊ पर है।

अन्त्य स्थिति में ऊ की स्थिति दुर्बल पड़ जाती है :—

सुन्द्रू, मुन्द्रू, सुआरू, लुहारू, लाल्लू, कास्सू।

यहां बलाघात प्रथम उ पर है। अन्तिम ऊ का उच्चारण पूर्ण नहीं है।

सुरू (शुरू) अकेला बोला जाय तो ऊ की दीर्घता स्पष्ट है। यदि इसी शब्द का शीघ्रता से उच्चारण वाक्य रचना में किया जाय तो दोनों उ एक जैसे सुनाई देंगे।

जै पूजू सुरू कर 'जय पूजा आरम्भ कर'। यहां प वाले ऊ पर बलाघात होने से उच्चारण स्पष्ट है।

इसी प्रकार अनुकरणात्मक शब्दों में प्रथम अक्षर में बलाघात होने से उ और ऊ का उच्चारण स्पष्ट है :—

उडू-उडू, कुरू-कुरू, सुरू-सुरू, तूरू-तूरू, चूरू-चूरू।

५. वर्तनी :

उ और ऊ के सम्बन्ध में दर्शित सामग्री के आधार पर स्पष्ट है कि व का उच्चारण ब हो गया है। शब्द की मध्य स्थिति में व का उ उच्चारण हो गया है। परन्तु यह उ स्पष्ट रूप में उ नहीं है जैसा कि इसका उच्चारण शब्द के आदि में होता है। यदि टिक कर बोला जाय तो उ सुनाई देता है। शीघ्र उच्चारण में यह उ और व के बीच की ध्वनि है। श्वास निर्गम के लिए मार्ग छोड़ देता है। ओंठ पूरी तरह गोल नहीं होते हैं।

स्वाद का उच्चारण यदि टिक कर किया जाए तो सुआद होगा। यदि उच्चारण मध्यम गति में किया जाए तो [सु व आद] में व श्रुति सुनायी देगी। यदि उच्चारण शीघ्रता में किया जाएगा तो दो स्वर उ तथा आ तनिक रुक कर नहीं बोले जाएंगे। इस अवस्था में स्वाद अपने मूल रूप में आ जाएगा।

त्वारे जो स्वारूएं स्वाहें स्वाहें द्वा ख्वाई।

इस वाक्य का मन्द गति में उच्चारण इस प्रकार होगा।

तुआरे जो सुआरूएं सुआहें सुआहें दुआ खुआई।

शीघ्रता में स्वारूएं के स्थान पर स्वावें भी सुना जा सकता है।

स्वनिक लिप्यंकन में उ और ऊ के विविध रूप दर्शाये गये हैं। वर्ण के ऊपर, नीचे, दायें, बाएं चिन्ह लगाने से पठन पाठन में बोध सुगम नहीं होगा और मुद्रण में ऐसे चिन्ह इधर-उधर हो जाने से बोध में और भी कठिनता होगी। साधु भाषा में निष्णात लेखक और पाठक स्वाद शब्द अपनाएंगे। उनके लिए बोली में व्यवहृत सुआद शब्द अटपटा लगेगा। वे इसे लेखक का प्रमाद कहेंगे।

इमङ् उवङ् की व्याकरणिक प्रवृति में स्वारूएं को स्वारूवें, मुण्डूए को मुण्डुवे, जानूए को जानुवे ठीक मानेंगे। संस्कृत और हिन्दी में प्रचलित सुवर्ण और स्वर्ण दो रूपों के आधार पर कई बोलियों में व्यवहृत व्यक्ति नाम सुअर्ण और सुअर्णा तो सुनने में मिलेगा, परन्तु लिखने में सुवर्ण या सुवर्णा और स्वर्ण या स्वर्णा का ही व्यवहार मिलेगा।

मुनूआं चुड़ूआं मुड़ूआं दी सुआह् करी भाऊए जो लुआई। 'लड़कों ने घास पाती की स्वाहा (राख) कर भाई को लगाई। इस वाक्य को अन्य प्रकार से भी लिखा जा सकता है :—

१. मुनुवां चुड़ुवां मुड़ुवां दी सुवाह् करी भाउवे जो लुवायी।

२. मुनुआं चुड़ुआं मुड़ुआं दी सुआह् करी भाउए जो लुआई।

३. मुन्वां चुड्वां मुड्वां दी स्वाह् करी भावे जो ल्वाई।

व्यक्तिगत उच्चारण के आधार पर चारों वाक्य ठीक हैं परन्तु सामान्य व्यवहार में तथा बोलीगत अध्ययन में इस वाक्य को प्रमुखता दी जाएगी :—

मुनुआं चुड़ुआं मुड़ुआं दी सुआह् करी भाऊए जो लुआई।

यदि बोली के संरचनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो हिमाचली बोलियों में ऊकारान्त शब्दों के रूप प्रत्यय रचना में इस प्रकार होंगे :—

मुण्डु	मुण्डूए	मुण्डूओ	मुण्डूआ।
भाऊ	भाऊए	भाऊओ	भाऊआ।

इनका प्रयोग वाक्य में इस प्रकार है :—

ओ मुण्डूओ ! जिन्नी मुण्डुएं ए मुण्डू फन्ने तिसदे भाऊए जो सद्दा।

ए लड़को ! जिस लड़के ने ये लड़के पीटे उसके भाई को बुलाओ।

संस्कृत में मनवे, भानवे, साधवे आदि रूप रचना के आधार पर मुण्डवे, चुडवे, मुड़वे आदि रूप इन बोलियों में व्यवहृत नहीं हैं, क्योंकि संस्कृत में दो स्वरों की अलग सत्ता मिलती है। प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक बोलियों में आई, आए आदि शब्दों में दो स्वरों की अलग सत्ता मिलती है।

व्याकरणिक रचना में ऊकारान्त शब्द में प्रत्यय जुड़ने पर ह्रस्व उ हो जाता है, जैसे वधू की रूप रचना में वधुओं, वधुएं रूप होते हैं। इसी आधार पर हिमाचली बोलियों में ऊकारान्त शब्दों के रूप प्रत्यय संयोग में बधूओं न होकर बधुओं, मुण्डुओं, भाउओं जैसे ह्रस्व उकार वाले होने चाहिए। ऐसा प्रयोग कई लेखक अपना रहे हैं।

व्यावहारिक और सरलता की दृष्टि से यदि परखा जाय तो पहाड़ी बोलियों में उकारान्त शब्दों का उच्चारण ऊकारान्त है। यथा—भानू, इन्दू, सिन्धू, बिधू आदि। इसके अतिरिक्त चाच्चू, नान्नू, मास्सू, सीत्तू, दित्तू आदि अनेक शब्द ऊकारान्त हैं।

पर प्रत्यय के संयोग में ऊ की दीर्घता कम हो जाती है, परन्तु इतनी कम नहीं कि ह्रस्व उ

तक पहुंच जाय। चुन्नू, मुन्नू, पुन्नू में च, म और प में जुड़े उ में जो ह्रस्वता है वह न में जुड़े ऊ से भिन्न है।

चुन्नूआ, मुन्नूआ, पुन्नूआ, पोढ़ूआ, चुन्नूए, मुन्नूए, पुन्नूए, पोढ़ूए, चुन्नूओ, मुन्नूओ, पुन्नूओ, पोढ़ूओ में ऊ यदि पूर्ण रूप से दीर्घ नहीं है तो यह ह्रस्वता की स्थिति तक भी नहीं पहुंचा है। द्रुत उच्चारण में ह्रस्व उ सुनाई पड़ता है। परन्तु मन्द उच्चारण में उ और ऊ के बीच का उच्चारण सुनाई पड़ता है। दीर्घ स्वर वाला प्रत्यय लगने से ऊ की दीर्घता कम हुई है और साथ ही द्वित्व व्यंजन भी नहीं रहा है। चुनूओ, मुनूओ, पुनूओ ऐसा उच्चारण हो गया है। अतः इस दृष्टि से ऊकारान्त शब्दों में ऊ की स्थिति सर्वत्र एक जैसी रहनी चाहिए। ऊ के आगे प्रत्यय लगा कर रूप रचना करनी चाहिए।

६. विकल्प :

व्यावहारिक और सरलता की दृष्टि से दर्शित तालिका में प्रथम रूप को वर्तनी में स्वीकार करना उचित है :—

ऊ – संयोग	रूप	विकल्प
– ऊ आ	सूआ	सुआ
	दूआ	दुआ (दूसरा)
	बूआ	बुआ (फूफी)
	सीतूआ	सीतुआ (व्यक्ति-नाम)
– ऊ ई	ऊई	उई (आश्चर्य बोधक)
	सूई	सुई
	छूई	छुई
	मूई	मुई
– ऊ ए	सूए	सुए
	दूए	दुए (दूसरे)
	सीतूए	सीतुए
–ऊ ओ	बूओ	बुओ (फूफी) [सम्बोधन]
	मुण्डूओ	मुण्डुओ (लड़को) [सम्बोधन]
	सीतूओ	सीतुओ (व्यक्ति-नाम) [सम्बोधन]

इसी प्रकार स्वर संयोग में शब्दों की दूसरी तालिका प्रस्तुत है। इसमें व्यावहारिक और सुगमता की दृष्टि से वर्तनी में प्रथम रूप को मान्यता दी गई है :—

उ – संयोग	रूप	प्रथम विकल्प	द्वितीय विकल्प
उ आ	तुआर	तूआर	त्वार (एतवार)
	गुआर	गूआर	ग्वार (गंवार)
	गुआला	गूआला	ग्वाला
	जुआन	जूआन	ज्वान (जवान)

अन्त उ आ	करुआ	करूआ	कर्वा (करवा)
	सुरुआ	सुरूआ	सुर्वा (स्रुवा)
	लकुआ	लकूआ	लक्वा (लकवा)

तीन स्वरों के संयोग में उ का प्रथम रूप वर्तनी में निश्चित होना चाहिए :—

उ – संयोग	रूप	प्रथम विकल्प	द्वितीय विकल्प
उ आ ई	बुआई	बूआई	बाई
	जुआई	जूआई	जवाई
	सुआई	सूआई	सवाई
उ आ ए	लुआए	लूआए	लवाए
	सुआए	सूआए	सवाए
	गुआए	गूआए	गवाए
अ उ आ	पउआ	पऊआ	पवा (पावा)
	हउआ	हऊआ	हवा
	गउआ	गऊआ	गवा
	खउआ	खऊआ	खवा
	ढउआ	ढऊआ	ढवा (ढेउआ पैसा)

चार स्वरों के सयोग के उदाहरण अधिक नहीं हैं। इनमें कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं जहां प्रथम रूप मान्य है :—

उ आ ई आ	बुआईआ	बूआईआ	बाईआ
	जुआईआ	जूआईआ	ज्वाईआ जवाईआ
	सुआईआ	सूआईआ	स्वाईआ सवाईआ
उ आ ई ए	बुआईए	बूआईए	बाईए
	जुआईए	जूआईए	ज्वाईए जवाईए
	सुआईए	सूआईए	स्वाईए सवाईए
उ आ ए आ	सुआएआ	सूआएआ	स्वाएआ सवाया
	तुलुआएआ	तुलूआएआ	तुल्वाएआ तुलवाया
	करुआएआ	करूआएआ	करवाएआ करवाया

ऊ का अन्य स्वरों के साथ संयोग कई प्रकार से है। कतिपय उदाहरण तालिका में प्रस्तुत किए जाते हैं। इनमें प्रथम रूप वर्तनी में मान्य होना चाहिए :—

ऊ – संयोग	रूप	विकल्प
अ ऊ	गऊ	गउ (गौ)
	रऊ	रउ (रह)
	बऊ	बउ (बैठ)

आ ऊ	भाऊ	भाउ (भ्राता)
	माऊ	माउ (माता)
	ताऊ	ताउ (ताया)
ई ऊ	घीऊ	घीउ घ्यू (घी)
	गीऊ	गीउ ग्यू (नाम)
	कीऊं	कीउं क्यूं (सेमफली)
ए ऊ	देऊ	देउ (देवी)
	ढेंऊ	ढेउं (फल विशेष)
	सेऊं	सेउं (सेब)
ओ ऊ	लोऊ	लोउ (लोई)
	डोऊ	डोउ (डोई)
	मोऊ	मोउ (मुआ, मरा) [सम्बोधन]

तीन स्वरों के संयोग में ऊ के उदाहरण इस प्रकार हैं जिनमें वर्तनी में मान्यता प्रथम रूप को देनी चाहिए :—

– ऊ संयोग	रूप	प्रथम विकल्प	द्वितीय विकल्प
आ ऊ ए	ताऊए	ताउए	तावे
	माऊए	माउए	मावे
	भाऊए	भाउए	भावे
आ ऊ आ	ताऊआ	ताउआ	तावा
	माऊआ	माउआ	मावा
	भाऊआ	भाउआ	भावा
आ ऊ ओ	ताऊओ	ताउओ	तावो
	माऊओ	माउओ	मावो
	भाऊओ	भाउओ	भावो

७. समस्या विचार :

हिमाचली बोलियों में उ और ऊ की वर्तनी की समस्या दर्शित तालिकाओं में सम्मत और वैकल्पिक-रूप में प्रस्तुत की गई है। कोशगत प्रक्रिया में वैकल्पिक रूप जो प्रचलित हो उसका उल्लेख भी आवश्यक है। बहु प्रचलित रूप की प्राथमिकता दर्शाना उससे भी आवश्यक है। केवल मूल रूप को आधार मानना भी लोक सम्मत नहीं है। उच्चारण मूलक ध्वनि को भी वर्तनी में लाना सर्व सम्मत नहीं है। उदाहरण स्वरूप कुनाम शब्द प्रचलित है और अर्थ गम्य है। परन्तु उच्चारण में भेद है। प्रचलित उच्चारण है क्नां। वाग् व्यवहार में सुनने में आता है—भ्यागा नां क्नां नी घोखने। प्रातःकाल नाम कुनाम नहीं रटने चाहिए, जैसे भले बुरे व्यक्ति, स्थान, वस्तु आदि के नाम प्रातः बिना खाये लेने से दिन अच्छा नहीं बीतता है–ऐसा समझा जाता है। अब यदि संस्कृत मूलक

शब्द कुनाम वर्तनी में लाया जाए तो उच्चारण की दृष्टि से ग्राह्य नहीं होगा। यदि उच्चारण मूलक बना शब्द वर्तनी में लाया जाय तो यह अटपटा लगेगा और लेखक अपना उपहास समझेगा। आवश्यकता इस बात की है कि हिमाचली व्याकरण में उच्चारण का निर्देश होना चाहिए और नियम के अन्तर्गत यह दर्शाना चाहिए कि शब्द की आदि स्थिति में उ का लोप हो जाता है। जैसे कु उपसर्ग में उ का लोप होकर क रह जाता है—कुनाम के लिए कनाम, कना, क्ना उच्चारण भेद हैं। इसी प्रकार अन्य उदाहरण दर्शाए जा चुके हैं–कदिन 'कुदिन' कबेल 'कुवेल' सबेल 'सुवेल' आदि।

उ और ऊ के अन्य स्वरों के संयोग में व का प्रयोग वर्तनी में सर्वसम्मत नहीं होगा। क्योंकि व का समावेश अनेक बोलियों की वर्णमाला में नहीं है। व या तो ब हो जाता है या उ में इसका परिवर्तन हो जाता है जिसके उदाहरण इस लेख में विस्तृत रूप से दिए गए हैं। संस्कृत में यह प्रवृति रही है कि दो स्वर इकट्ठे नहीं आते हैं। इनमें गुण, वृद्धि या यण् सन्धि हो जाती है।

परन्तु प्राकृत और अपभ्रंश में स्वर संयोग बढ़ता गया है। संस्कृत में वधू शब्द की तृतीया विभक्ति एक वचन में वध्वा रूप होगा, वधुआ नहीं। क्योंकि दो स्वर साथ-साथ नहीं ठहर सकते हैं। परन्तु प्राकृत में वहू शब्द की तृतीया विभक्ति एकवचन के रूप इस प्रकार मिलेंगे :—

वहूए वहूई वहूआ वहूअ

स्वर संयोग की यह प्रवृति प्राकृत से वढ़ती हुई आजकल की प्रादेशिक बोलियों में भी पहुंच गई है। अब इसे उच्चारण के आधार पर टालना कठिन है। इसलिए हिमाचली बोलियों में भी उ और ऊ का प्रयोग स्वतन्त्र रूप में स्वर संयोग के सर्वसम्मत है।

प्राकृत और अपभ्रंश में उ का प्रयोग उच्चारण में मधुर होता गया। संस्कृत के सर्वनाम अत्र, तत्र, यत्र, कुत्र के स्थान पर एत्थु, तेत्थु, जेत्थु, केत्थु का प्रयोग ह्रस्व उकार में होने लगा। इन प्रयोगों का उदाहरण अपभ्रंश के एक ही छन्द में देखिए :—

जइ सो छडदि प्रयावदि केत्थू वि लोप्पिणु सिक्खु।
जेत्थु वि तेत्थु वि एत्थु जगि भण तो तहि सारिक्खु।

इस भांति अन्य उदाहरण श्री मधुसूदन प्रसाद मिश्र कृत प्राकृत व्याकरण, चौखम्बा, वाराणसी (१९६०) के प्रकाशन में उपलब्ध हैं।

उ की यह परम्परा वर्तनी में गुरुवाणी में भी सुरक्षित है, परन्तु अत्र उच्चारण में नहीं है। लेखक की पुस्तक 'प्रभुयशोभावना' (सुजानपुर, १९७८) पृष्ठ ५३ में मूलमन्त्र देवनागरी में इस प्रकार है :—

एक ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥
जपु
आदि सचु जुगादि सचु, है भी सचु नानक होसि भी सचु।

इस प्रकार उ और ऊ की लोकप्रियता का प्रमाण प्राकृत परम्परा से सिद्ध है।

उपसंहार

उ का व्यवहार वर्तनी में है परन्तु विशेष परिस्थिति में उच्चारण में नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश में पायी गई ह्रस्व उकार की प्रवृत्ति हिमाचली बोलियों में बल पकड़ गई है। इससे उ में दीर्घता आ गयी है। अनेक शब्दों का व्यवहार ऊ के उच्चारण के साथ किया जाता है जिसे वर्तनी में अपनाना आवश्यक हो गया है।

लोक व्यवहार में जो रूप प्रचलित हो गया वह मान्य समझा गया है। लेखक और पाठक इसे सर्वसम्मत होने से ग्रहण करेंगे। यदि ऐसा न किया गया तो लेखक अपनी शैली अपनाएगा और पाठक उसे समझने में कठिनता अनुभव करेगा। अतः शास्त्रसम्मत होने के साथ लोकसम्मत व्यवहार भी होना आवश्यक है। वर्तनी में रूप का निश्चय भी आवश्यक है।

इस प्रसंग में प्रदेश के भाषाविज्ञ, लेखक और आलोचक वर्ग के पास उ और ऊ वाले शब्दों का संग्रह विकल्प और विकृत रूपों के साथ भेजना आवश्यक है। इससे वे अपना मत व्यक्त करने में स्वच्छन्द होंगे। ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टिकोण से वर्तनी में उ और ऊ का रूप निखर आएगा। इस अनुसन्धान से उ और ऊ का विशाल शब्द संग्रह होगा और तर्क तथा व्यवहार से वर्तनी में उ और ऊ के रूप में निश्चय तथा स्थिरता से लेखक और पाठक लाभान्वित होंगे।

वि०वि० शोध संस्थान,
पंजाब विश्वविद्यालय,
साधु आश्रम–१४६०२१
होशियारपुर (पंजाब)

हिमाचल प्रदेश के काले चमकदार मृदभाण्ड

—अमरनाथ खन्ना

अप्रैल १९७९ में लेखक को हिमाचल प्रदेश में धर्मशाला (जिला कांगड़ा) के निकट दाड़ी मेले में जाने का अवसर मिला। पुरातत्वज्ञ होने के नाते लेखक का ध्यान एक कुम्हार की दुकान की ओर आकर्षित हुआ जहां बहुत सारे लाल मृदभाण्ड के बीच काले चमत्कार मृदभाण्ड भी प्रदर्शित थे। काले चमकदार मृदभाण्ड का सूक्ष्म निरीक्षण करने के बाद लेखक ने यह पाया कि इनमें और उत्तरी काले चमकदार मृदभाण्ड (*Northern Black Polished ware*) में मौलिक सादृश्य है। उत्तरी काले चमकदार मृदभाण्ड के नाम से प्रसिद्ध काले चमकदार नये तथा आकर्षक मृदभाण्ड का ६०० ई० पू० के लगभग प्रादुर्भाव हुआ था। इसके साथ ही गांगेय भारत की सांस्कृतिक एकरूपता भौतिक रिकार्ड में परिलक्षित होती है। काले चमकदार मृदभाण्ड के बाह्य भाग की तकनीक स्पष्ट रूप से यूनानी काले मृदभोण्ड से मिलती थी। दोनों विधियों में मिट्टी के विशेष उत्तम कणों द्वारा बाह्य सज्जा की जाती थी। स्वभावतः उत्तरी काले चमकदार मृदभाण्ड की निर्माण प्रक्रिया (विधि) *(technique of manufacture)* की समस्या की संजीदगी से अवगत लेखक को हिमाचल के उक्त भाण्ड की निर्माण विधि का ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता हुई। अतः उसने श्री सरनदास नाम उस कुम्हार का पता लिख लिया ताकि वह धर्मशाला से लगभग छः किलोमीटर दूरी पर सराह में स्थित उसकी कार्यशाला में उससे मिल सके। कुम्हार ने काले चमकदार मृदभाण्ड के बनाने के लिए वांछित कच्चा माल तथा निर्माण की तकनीक निम्नलिखित बताई :—

(क) कच्चा माल :

मृदभाण्ड बनाने के लिए मिट्टी टीका बैंदी से, रेत नालों से (नदी से नहीं), रेत वाली मिट्टी सरांह से, लेप का लाल रंग टीका घरोह से, चित्रकारी के लिए सफेद रंगचढ़ी घरोह (पीतलू) से, पूरे घड़े पर लगाए जाने वाला सफेद लेप टीका सदूं से, तथा काला लेप तलवाड़ा, मुकेरियां (पंजाब) से आता है। यह सब चीजें दो एक किलोमीटर से लेकर ७० किलोमीटर तक की दूरी से लाई जाती हैं।

(ख) निर्माण विधि :

१. मृत्तिका या चिकनी मिट्टी तैयार करना :

मृदभाण्ड के निर्माण हेतु उपयुक्त वहां पर उपलब्ध मिट्टी को महीन करने के लिए पीसा जाता है। फिर मोटे-मोटे कण अलग करने के लिए उसे छाणा जाता है। तदोपरान्त महीन की गई

मिट्टी को पानी से सना जाता है। सनी हुई मिट्टी को एक एक दिन के लिए गर्त में डाल दिया जाता है। और ऊपर से गर्त को ढक दिया जाता है। वहां वह मिट्टी पसीजने लगती है तथा मिट्टी जितने अधिक समय तक ढके हुए गर्त में रखी जाएगी उसे गढ़ना उतना ही सरल होगा। अच्छा फल प्राप्त करने के लिए कभी कभी तो यह मिट्टी पन्द्रह-पन्द्रह दिन के लिए आवृत गर्त में रहने दी जाती है। गर्त से निकालने के बाद फिर से यह मिट्टी सानी जाती है। इस प्रकार चाक पर मृदभाण्ड गढ़ने के लिए मिट्टी तैयार हो जाती है। चाक बनाने में लकड़ी, रेत, मिट्टी तथा पत्थर का प्रयोग होता है। चाक में लगी मिट्टी में बाकड़ी के बाल, नारियल की जटा, आदि मिलाए जाते हैं। छाया में यह चाक सुखाया जाता है और इसे सुखने में तीन मास तक लग जाते हैं।

२. मृद भाण्ड बनाना :

तैयार की गई मिट्टी, मिट्टी की परत से सनी लकड़ी की चाक पर चढ़ा कर, मनोवांछित आकार में पारम्परिक विधि से ढाली जाती है। मृदभाण्ड के आकार मर्तबान, ढक्कनदार बड़ा कटोरा, ढक्कनदार कटोरा, गड़वी, छोटी गड़वी, पतीली, प्याली, चिल्लम आदि है। इस प्रकार बनाए गए मृदभाण्ड गर्मियों में एक दिन के लिए तथा सर्दियों में दिन के तापमान को ध्यान में रखते हुए दो या तीन दिन के लिए धूप में रखे जाते हैं।

३. बाह्य रूप संवरण :

स्थानीय उपलब्ध 'बन्नी मिट्टी' पीस कर महीन कर ली जाती है। फिर धूप में सूखे हुए मृदभाण्ड पर उस मिट्टी से लेप किया जाता है। जिला कांगड़ा के पालमपुर और कोटला के मध्यवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले सभी कुम्हार मृदभाण्ड पर लेप करने के लिए बन्नी मिट्टी का ही प्रयोग करते हैं। लेप लगाने की प्रक्रिया के दौरान ही लेप सूख जाता है। मृदभाण्ड को चमकदार बनाने के लिए मलमल के कपड़े को मोड़ कर उसको थोड़ा चिकना करने के लिए उस पर जरा सा सरसों का तेल लगाया जाता है। अनपके भाण्ड को थोड़ी देर तक धूप में गर्म करके उस पर चिकना मलमल का कपड़ा तब तक रगड़ा जाता है जब तक उसमें अपना प्रतिबिम्ब न दिखाई देने लगे। रगड़ने की इस प्रक्रिया के दौरान कई बार तो कुम्हार अथवा उसकी पत्नी के हाथों पर छाले पड़ जाते हैं।

४. मृदभाण्ड पकाना :

तदोपरान्त मृदभाण्ड को आंच पर रखा जाता है। बर्तनों पर काली चमक आने के लिए आंच धीमी रखी जाती है। बन्द किए हुए मिट्टी के मर्तबान या बैरल में मृदभाण्ड उल्टे करके रखे जाते हैं तथा बैरल को पूर्णतया बन्द कर दिया जाता है ताकि कहीं से भी हवा अन्दर न जा सके। मृदभाण्ड के साथ चीड़ के वृक्ष की मज्जा (गूदे) के टुकड़े भी रखे जाते हैं। यह लकड़ी के टुकड़े जिन्हें स्थानीय भाषा में 'जगण' कहा जाता है तेल युक्त होते हैं। इसलिए इन्हें जलाने में बहुत अधिक धुआं होता है चाहे उन्हें आग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लगे।

धूप में सुखाए गए मृदभाण्ड से भरे हुए कुछ बैलर आंवे (भट्टी) में रखे जाते हैं। आपेक्षित तापमान उत्पन्न करने के लिए उपलों के चालीस पचास टोकरों की आवश्यकता होती है। जब

ठण्डी हो चुकी भट्टी में से पके हुए बर्तन बाहर निकाले जाते हैं तो उनकी बाह्य सतह काली और चमकदार होती है। इनमें और उत्तरी काले चमकदार मृदभाण्ड (*Northern Black Polished Ware*) में मौलिक सादृष्य नज़र आता है। इन काले चमकदार मृदभाण्डों में दहीं, आचार, मुरब्बा, मक्खन, घी आदि रखे जाते हैं।

मृदभाण्ड निर्माण की उपरोक्त विधि से यह प्रकट होता है कि लेप, ज़रा चिकने मलमल के कपड़े से मृदभाण्ड को रगड़ने, तथा पूर्णतया बन्द पात्र में उसको पकाने तक की सारी प्रक्रिया से मृदभाण्ड में चमक आती है। जिला कांगड़ा में चैतड़ू (मूल शब्द चैत्य) के निकट स्थित बन्डी या भेरी डुधियारी और सराह नामक गांवों में ऐसे काले चमकदार मृदभाण्ड बनाए जाते हैं। चैतड़ू में बौद्ध स्तूप के अवशेष अभी भी विद्यमान है। निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि ऐसे मृदभाण्ड बनाने की प्रथा और तकनीक की शिक्षा कई पीढ़ियों से पिता से पुत्र को मिलती रही है।

हिमाचल प्रदेश के मृदभाण्ड के बारे में लिखते हुए यह भी लिख दें कि इस प्रदेश में भी सबोबाल, नालागढ़ तहसील, जिला सोलन, में सिन्धु सभ्यता के मृदभाण्ड तथा चित्रित भूरे मृदभाण्ड (*Harappan pottery and painted grey ware*) हाल ही में प्राप्त हुए हैं। इन मृदभाण्डों का मिलना हिमाचल प्रदेश के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

पंजीकरण अधिकारी (पुरावशेष)
भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश
शिमला-१७१००२
तथा धर्मशाला-१७६२१५

कांगड़ी लोक गीतों में 'विरह और मिलन गीत'

—विमला कुठियाला

लोक-गीत हमारी संस्कृति को अनुप्राणित करते हैं। लोक-गीत जनसाधारण के रहन-सहन, रीतिरिवाज, मान-मर्यादा एवं पारिवारिक सुख समृद्धि का शुद्ध स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। लोक-गीत लोक भाषाओं के माध्यम से जन-जन की कण्ठध्वनि में समय समय पर मुखरित होते रहते हैं। ये गीत अनेक प्रकार के हैं जैसे— जन्मगीत या संस्कार गीत, विवाह गीत, लड़कों के विवाह की घोड़ियां तथा लड़कियों के विवाह में सुहाग गाए जाते हैं। लड़कियों की विदाई के गीत, वधु प्रवेश गीत, वधावे, झूले के गीत, पति पत्नी संवाद गीत, विरह और मिलन गीत, सास बहु के गीत, नणद-भावज के गीत, माता की भेंटें, झंझोटियां, गिद्धा, लोरियां, हंसी मजाक के लिए गालियां भी गीतों में गाई जाती हैं और सब से अधिक पावन पुनीत व भाव प्रधान गीत हैं भाई बहिन के पवित्र स्नेह की गंगा बहाने वाले, 'भाई बहिन' के गीत।

इस प्रदेश की सुरम्य घाटियों में, पर्वतों की चोटियों पर सघन वनों में चीड़ों की ठण्डी-२ पवन की सरसराहट में यदा कदा बांसुरी की तान पर थिरकने वाले उक्त लोक-गीत मर्मस्थल को स्पर्श करते हुए कानों में मिश्री सी घोल देते हैं। वैसे तो सभी लोक-गीतों में लोक गायक की कला व वास्तविकता दृष्टिगोचर होती है किन्तु, 'विरह और मिलन' गीत बेजोड़ हैं। एक नवविवाहिता का पति विबाहोपरान्त विदेश चला जाता है। वहां से अपनी पत्नी के लिए प्रसाधन सामग्री व अटल सुहाग की निशानी चमकती हुई विन्दियां लाता है। वह विन्दी लगा कर जब बाजार से होकर निकलती है तो सभी उसके रूप की प्रशंसा करते हैं। इस भावमय लोक-गीत को गायिका गाती है :—

ब्याह कीता सुत्तरात्तर नौहृता काबुल जा बड़या अजी हो काबुल,
काबुल ते क्या खट्ट के ल्याया बारह बिन्दलियां अजी हो बारह बिन्दलिया।
दो सै दित्तियां पत्तन ल्गातिये बाकी दस रहियां अजी हो बाकी दस रहियां,
दो सै दित्तियां सस्सु नणानां बाकी अठ रहियां अजी हो बाकी अठ रहियां।
दो सै दित्तियां दराण जठाणियां बाकी छे रहियां अजी हो बाकी छे रहियां,
दो सै दित्तियां नेड़ पडेसणी बाकी चार रहियां अजी हो बाकी चार रहियां।
दो सै दित्तियां सईयां सुहेलियां बाकी दो रहियां अजी हो बाकी दो रहियां,
इक्य सै दित्ती घरे दिया सौकणी बाकी इक्क रहि है अजी हो बाकी इक्क रहि है।
इक्की लगाई गोरी हट्टां वाली निकली बारह पुज्ज रहियां अजी हो बारह पुज्ज रहियां।

नवोढ़ा पत्नी को घर छोड़ कर जब वह नौकरी पर जाने लगता है तो बहाने से उसे रोकती हुई वह कहती है :—

चैते न जाइए पिया वण तण फूल,
बसाखें तां डाखां पकियां ।
जेठे न जाइए पिया धुपां पौ......न,
हाडे तां आखी दुःखण साड़ियां ।
सौणे न जाइए पिया पींगां पौ ......न,
भादूं तां रातीं नेहरियां ।
असु न जाइए पिया पित्तर मनानी,
कत्तक दिआली मैं पूजदी ।
मग्गर न जाइए पिया लेफ भरांवां,
पोहे तां रातीं होण ठण्डियां ।
माघे न जाइए पिया लोहड़ी घर आई,
फग्गण तां फगुआ मैं खेलदी ।
बीते नी गौरिए तेरे बारह माह,
हुण सानु नौकरी पर जाण दे ।

नवविवाहिता पत्नी को छोड़ कर जाना कितना दुःखद है, किन्तु विवशता है। उपरोक्त पंक्तियों में पति की मनुहार देखते ही बनती है। इस लोक-गीत से पता चलता है कि पहले पुरुष धनोपार्जन के लिए घर से बहुत दूर नगरों या विदेश में जाते थे और औरतें घर पर रह कर परिवार की सेवा करती थीं परन्तु आज युग बदल गया है। जहां पुरुष की नौकरी है, वहीं परिवार साथ चलता है। विरह वाली तो कोई बात ही नहीं रह गई है। इस लोक-गीत की अन्तिम पंक्तियों में पत्नी दिल पर पत्थर रख कर कहती है :—

जाइए तां जाइए पिया उत परदेस,
जांदे दी लग्गे तुआड़ी नौकरी।
बौइए तां बौंइए पिया कुर्सियां डाई,
गल्ल करो बड्डे लोक दी।

आखिर वह भी तो अपने पति की उन्नति चाहती है उसे उच्चपदाधिकारी बना हुआ देख कर खुश होना चाहती है। समय पंख लगा कर मानो उड़ गया। ऋतुएं घूम फिर कर आ गईं। वृक्षों पर नई कोपलें और फल फूल भी आ गए। अमराइयों में कोयल 'कूह कूह' करने लगी पर उसका परदेशी पिया न आया। वह अपने विरह-वेदना किसी से कैसे कहे। आम की डाली पर बैठी हुई कोयल से कहती है :—

कोयले, बैठी है अम्ब सुहाणे सुहाइएं कोयले,
कोयले कच्चडे अम्ब न तोड़ सुहाइएं कोयले ।
कोयले पक्कण दे दिन चार झुकी रहियां डालियां ।
कोयले फलिएं घोड़ा हिणकया दम छणकया,
कौण परौअणां आया सुहाइएं कोयले ।

कोयले फलिएं डोला चीखया चूड़ा छणकया,
कौण घियाण आई सुहाइएं कोयले ।
कोयले फलिएं घोड़ा हिणकया दम छणकया,
बड़का जुआइया आया सुहाइएं कोयले ।
कोयले फलिएं डोला चीखया चूड़ा छणकया,
बड़की घियाण आई सुहाइएं कोयले ।

इस लोक-गीत में संस्कृत के महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलं' में राजा दुष्यन्त के वियोग में तड़पती हुई शकुन्तला का आश्रम के पशु पक्षियों, लता कुंजों, फूल पत्तों से पूछने का वर्णन आता है। ठीक वैसा ही वर्णन उक्त लोक-गीत में विरहणी पत्नी की मनोवैज्ञानिक स्थिति का है। कितनी सौभाग्यशालिनी है उसकी नणद जो पति के साथ पीहर आई है। क्या वह भी अपने पति के साथ मायके जाएगी ? कौन सा शुभ दिवस होगा वह ? कहना न होगा कि हमारे लोक-गायक कालिदास से कम नहीं है। वियोगिनी नारी का पति जब वर्षों तक घर नहीं आया तब वह पण्डित जी से पूछती है :—

सौण के महीने सईयो नी मैं बूरिया दुध दुहानियां,
मेरी बूरी संदूरी सदा दुधधारी मैं रामे नूं खीर खुआनियां।
भादूं के महीने सईयो नी मैं पादे नूं पुछ्णा जानियां,
पढ़ पढ़ वो पाधा पत्तरिया मेरे श्यामे ने क्या चिर लाया।
असु के महीने सईयो नी मैं अस्सुए आसियां पानियां,
घर औए नणाने वीर तेरा नी मैं औंदे शगण मनानियां।

इन्तजार के क्षण बहुत लम्बे होते हैं। वह खाना पहनना भूल गई और उदास रहने लगी। उसकी दशा का वर्णन करता हुआ लोक गायक संकेत करता है :—

सै किजा रेंदियां गोरियां मेरे सोफिरा जी,
जिन्हां दे कंत परदेस गए........।
सिरे नी लांदियां कांधियां मेरे सोफिरा जी,
रेंदियां मैलड़े भेस हैं ....।

विरह संतप्त हृदय को जलाता हुआ सावन भी आ गया। वह परदेशी पिया को पत्र लिखती है :—

सुण ढ़ोला जी इक सावण आया जी,
घमघोरा पैयां जी हुण तुसां आओ घरे।
सुण गोरिए नी साड़ा औग्रण नाहीं जी,
साड़ा जावण नाहीं जी हुण तुसां रहो घरे।

सुण ढ़ोला जी इक राएपुर गुजरी जी,
उदे नैण रसीले जी उदे बैण रसीले जी,
हुनी तुसीं मोहें लए।

अब ऐसा बहाना लिखकर भेजती है जिसके सिवाए कोई चारा ही नहीं है :—

सावण सावण करी रही सुण सावणा जी,
घर तुआड़िया माऊ मंदा हाल कि तुसीं
घर आवणा जी ....।
सावण सावण करी रही सुण गोरिए नी,
चंगा देया वैद बलाणा माऊ दा लाज कराणा,
कि साड़ा आवण है नहीं।

पति को पूर्ण विश्वास है कि उसकी पत्नी घर का काम सुघड़ता व निपुणता से संभालती है और सास श्वसुर की सेवा में भी हमेशा लगी रहती है।

जिस प्रकार सावन के अंधे को चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है उसी प्रकार विरहणी को भी प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर ही सुन्दर दिखाई देता है। निम्न लोक-गीत में उक्त भाव, संवाद रूप में व्यक्त किया गया है :—

अजी गजमल गजमल गजमल कहिए छैल,
राजे दे नौकर छैल, राए मुसाफर छैल, दम्मा दे लोभिए छैल,
सूए दी ऋत्त आई है ....।
गोरिए ललारी बलाई लै सुआ रंगाई लै,
सैयां सदाई लै, ओढ़ी अढ़ाई लै,
साड़ड़ा आवण है नहीं .....।
अजी गजमल गजमल गजमल कहिए छैल,
राजे दे नौकर छैल, राए मुसाफर छैल, दम्मा दे लोभिए छैल,
पींगा दी ऋत्त आई है .....।
गोरिए थम्म गड़ाई लै, रस्से बटाई लैं,
पींग पुआई लै, सईयां सदाई लै, झूटी झटाई लैं,
साड़ड़ा औंअण है नहीं......।
अजी भैंण तुआड़ी नणद हमारी छैल,
आड़ू दे जेडे जेडे पेड़े बणवांदी छैल,
पीपल दे पत्तें जेडे फुलके पकवांदी छैल,
ए दुःख किसे नाल कहिए ....।
गोरिए कहिए तां कहिए .....
बड्डी जठाणी नाल छोटी दराणी नाल,
मने दी सुहेली नाल नहीं तां मने बिच सहिए......।

सहनशीलता का कितना सुन्दर उदाहरण है उक्त लोक में। पहले छोटी आयु में विवाह होते थे। पति प्रदेश में नौकरी करता और पत्नी घर गृहस्थी का काम काज करती-करती जवान हो जाती और सास की आज्ञानुसार वह सभी कामों में निपुण बनती। विरहणी पत्नी प्रतिदिन सारे घर का पानी भरती, पशुओं को भी पिलाती और पीने के लिए कहीं से भी ठण्डा पानी लाती। एक दिन वह गांव के पनघट पर पानी भरने गई। वहां उसे किसी अनजाने घुड़सवार ने पानी पिलाने को कहा। उसने लम्बा सा घूँघट निकाल कर पानी पिला दिया। घर जाते ही सास ने देर से आने का कारण पूछा तो वह व्यथित होकर गाने लगी :—

संजले तां बेले नी सस्सु झगड़ा न छेड़यां अजी हो झगड़ा न छेड़यां
सारे घरे दा भरना पाणी ए .....
पंज सत घड़े नी सस्सु कटुआं ने पीते अजी हो बछुआं ने पीते
दूरे भरना जलया पाणी ए .....
पंज सत खूइयां नी सस्सु होर तलाईयां
झिकिलया खूईया ठण्डा पाणी ए .....
नीला तां घोड़ा नी सस्सु नरमे दा जोड़ा
अजी हो पतला सवार .....
बैंठड़ा झगड़ा पाई ए .....
आ तां नी नूएं तेरा खाअंव लगदा
अख भरी मत दिखदी ए......
झूंडे दे अन्दर गोरी छम छम रोई
मैं क्या पाप कमाया है ?
निक्किया हुं दिया जो सस्सु छड़ी गेया जी,
हुण होई मटियार ऐ ...... ।

कितनी मर्मस्पर्शी हैं ये पंक्तियां—सास जी का परदेशी बेटा किसी सरकारी काम से, अपने गांव के नजदीक से होकर जा रहा था, प्यास लगी तो पनघट पर पानी पीने के लिए ठहर गया। पानी भरने वाली हाथ पांव की गठन और रंग ढंग से उसे अपनी पत्नी जैसी ही लगी। अब वह जानबूझ कर उससे बातचीत व पानी पिलाने की जिद्द करने लगा। सास द्वारा दी जाने वाली चेतावनी ने उसके मन में उथल पुथल मचा दी, वह सोचने लगी यह कैसी बिडम्बना है। पिता ने कन्यादान के समय जिस के हाथ में मेरा हाथ सौंपा था उसी जीवन साथी को देखने पर प्रतिबन्ध लग गया। उसका चांद सा मुखड़ा, भरपूर यौवन में विरह की भट्ठी में तप कर अधिक निखार पा गया और घूंघट की बदली से मानों ढ़क गया है। उसकी बड़ी-२ आंखों में सावन भादों की सी घटाएं उमड़ आईं। वह अपने दुर्भाग्य को कोसने लगी। 'बिन साजन जीना भी कोई जीना है।' उसका मन बोझल हो गया, अन्तर की वेदना कण्ठ-स्वर में फूट पड़ी :—

बगदी थी रावी बगदी थी रावी उपर कंजरी डेरा,
दिंदी थी मुजरा, दिंदी थी मुजरा राहमड़ कैंदी से मेरा

जी मैं नसो दिंदी, मैं नसो दिंदी,
रांझा बहुत प्यारा ।
बगदी थी रावी बगदी थी रावी,
बिच सट्टणी हाँ गन्ना जी, छैल गुम्राया छैल गुम्राया,
इन्हां सैहरे दियां रन्नां जी, कोई दस्सी जायो कोई समझायो
रांझा नजरी न ग्रायो...... ।
बगदी थी रावी बगदी थी रावी बिच सट्टनी करीला जी,
ग्रसां छड्डे मापे ग्रसां छड्डे मापे
तुसां छडणा कबीला जी, कोई दस्सी जायो कोई समझाग्रो
रांझा नजरी न ग्रायो...... ।
बगदी थी रावी बगदी थी रावी बिच सट्टनी हाँ पुड़ियां जी,
छैल गुम्राया छैल गुम्राया इन्हां सैहराँ दियाँ कुड़ियाँ जी,
कोई दस्सी जायो कोई समझाग्रो
राँझा नजरी न ग्रायो ...... ।
बगदी थी रावी बगदी थी रावी बिच सट्टनी हाँ गरना जी,
तुसाँ नहीं ग्रौणा तुसाँ नहीं ग्रौणा
ग्रसाँ डुब्बी के मरना जी कोई दस्सी जायो कोई समझाग्रो
राँझा नजरी न ग्रायो...... ।

आखीर भगवान ने उसकी मूक वेदना- युक्त पुकार सुन ही ली । उसका परदेशी पिया अपने गांव लौट आया आराम करने के लिए बाग की ठण्डी छाया में बैठा और अपने आने की सूचना किसी परिचित के पास घर भेज दी । विरहणी प्रतिदिन मैले कुचैले परिवेश में पति के आने की राह देखती थी । सहसा उसके कानों में लोक-गीत की पंक्तियां गूंजने लगी ।

वारी, बाहरे ताँ बरियाँ कंद घर ग्राया नी ग्रड़िए
ग्राई बैठा ठण्डें बागे च
वारी, सदयो झीवर पाणी गर्म करायो
गोरी दा सीस मली दली न्हायो ।
वारी, सदयो नायण गोरी दा सीस गंदायो ग्रड़िए
सुच्चयाँ बाग पुग्रायेयो...... ।
वारी, लाई ताँ पैहनी गोरी सेजा जो चल्ली नी ग्रड़िए
देर गमानिया हसया—
वारी, दिखा नी दिखा मेरियो सई सुहेलड़ियो
इस देरे दा ग्रसाँ क्या भेड़या ?
वारी, हासे मनाई गोरी सेजा जो चल्ली नी ग्रड़िए
नणदा लड़िकिया ने छि...थकया

वारी, दिखा नी दिखा मेरियों सईयो सुहेलड़ियों
इस नणदा दा असाँ केया भेड़या ?
वारी, छिक्का मनाई गोरी सेजा जो चल्ली नी अड़िए
कंत गनानी न जागया,
वारी, दिखा नी दिखा मेरियो सेईयो सुहेलड़ियो
इस कंते दा असाँ केया भेड़या ?
वारी, वाटा दा थकया निन्दा दा मथया नी अड़िए
आईया दी सार न जाणी है ।

पहले प्रतिदिन कंघी करने का न तो किसी के पास समय ही था और न ही चाहना। सिर मैला होने पर गांव की नायण घर-२ घूमती, औरतों के सिर नहलाती, तेल डालती, कंघी से बाल संवारती, बारीक-बारीक मीढियों से सिर पर एक सुन्दर सा बाग बनाती, उसमें सोने या चांदी के चौंक-फूल से सिर को सजाती । जब किसी सुहागिन का पति वर्षों के पश्चात धनोपार्जन करके घर आता तब भी ऐसा करना शगण माना जाता । झीवर आकर पानी गर्म करता और नायण सोलह श्रृंगार से उसे पिया मिलने के लिए तैयार करती । उपरोक्त पंक्तियों में पहले शरारत से देवर और फिर नणद उसके मधुर मिलन में रुकावट डालते हैं । तब वह सहेलियों से पूछती है कि मैंने इनका क्या बिगाड़ा है ?

कुल वधुएं पारिवारिक मर्यादाओं की परिधि में ही शोभा पाती हैं । घर में पति के शुभागमन का समाचार पाकर कुशलता पूछने वालों का तांता सा लग गया बहु सास नणद व अन्य नारियों की सेवा सत्कार में व्यस्त रहने के कारण पति से अधिक मिल जुल न पाई । कभी-२ मिलने पर पति महोदय की प्यार भरी हरकत का वर्णन सास को बताती हुई बहु की ही जबानी निम्न लोक-गीत में सुनिए :—

निक्कियाँ निक्कियाँ भंगा नी से बड़ियाँ होइयाँ,
सातें लौंगा दा बाड़ दुआमदा सी ।
कोरा कोरा छक्कु नी रंगीन छक्कु,
सातें भंगिया भंग चुगामदा सी ।
पतला डण्डा नी रंगील डण्डा,
सातें भंगिया भंग कटामदा सी ।
पतला पतला सालू नी रंगीन सालू,
सातें भंगिया भंग छणामदा सी ।
कोरा कोरा कुज्जा बिच ठण्डा पाणी,
सानूं छिटयाँ नाल जगामदा सी ।
समझा लै सस्सु पुत्ते आपणे नूं,
साड़ी बालड़ी नींद गुआमदा सी ।
चुप कर चुप कर नूंए नी मजाज भरिए,
तेरे हसणे दे ताईं जगामदा सी ।

मोटी मोटी रोटी न पकाई सस्सु,
राँझा मोटी दी सार न जाणदा ए।
पतली लस्सी न बरोली सस्सु,
राँझा पतली दी सार न जाणदा ए।
खा लै खा लै राँझा वे मजाज भरया,
तेरे नफराँ नूं लुच्चियाँ तलानियाँ।

बाल्यावस्था में विवाह हुआ, किशोरावस्था व यौवन में विरह वेदना सहन करती रही। ससुराल की चार दीवारी के भीतर दुःख के दिन काटे। अब पीहर से भी बुलावा आया, वह सास श्वसुर से जाने के लिए आज्ञा मांगती है और अन्त में पति से मनुहार करती है :—

अरज बन्दी करी रही सस्सु कि भैयें सानूं घल बी ए.....
भैयें तिजो किजा भेजाँ नूंएं कि कम्मे मेरे कौण करे.....
कम्मे तुआड़ियाँ धियाँ करन सस्सु कि भैयें सानूं जाण बी दे।
अरज बन्दी करि रही सौरा जी कि भैयें सानूं घल बी ए.....
भैयें तिजों किजा घलाँ नूंएं कि हुक्के मेरे कौण भरे.....
हुक्के तुहाड़े पुत्त भरन सौरा जी कि भैयें सानूं जाण बी दे।
अरज बन्दी करी रही ढोला कि भैयें सानूं घल बी ए.....
भैयें तिजो किजा घलाँ गोरिए कि सेज मेरी सूनी बी ए.....
सेजा तुआड़िया फुल्ल धराँ ढोला कि भैयें सानूं घल बी ए.....
इन्हाँ फुल्लाँ बास नहीं गोरिए कि भैयें तिजो किजा घलाँ.....
इन्हाँ फुल्लाँ बास दिगी ढोला कि भैयें सानूं जाण बी दे।

कितना सुन्दर व दिल को गुदगुदाने वाला है यह संवाद। अब वे दोनों मिलकर परिवार को सुखी व समृद्ध बनाने में लगे रहते हैं। इनका जीवन आनन्द से व्यतीत हो रहा। इस मौज बहार को देखकर लोक गायक भी आनन्द विभोर हो उठता है। कण्ठ स्वर गूंजता है :—

पीपलिए चारो झोलरिए किनी मोड़या तेरा डालू,
वधावे नूं बल गईयाँ।
ईन्हीं राहें तेरा वीर गया, ऊन्हीं मोड़या मेरा डालू,
वधावे नूं बल गईयाँ।
डालू न मोंडयाँ वीरा कलियाँ न तोड़, फुल्ल बीणी पग धरयाँ,
वधावे नूं बल गईयां।
कीनी परोलियाँ ओबरियाँ किन्हीं लिखे तितर मोर,
वधावे नूं बल गईयाँ।
वीरे उसारियाँ ओबरियाँ, भावो लिखे तितर मोर,
वधावे नूं बल गईयाँ।

कौण सुता तित्त ओबरिया, कौण झोले ठण्डी पौण,
बधावे नूं बल गईयाँ ।
वीर सुता जित ओबरिया, भावो झोले ठण्डी पौण
बधावे नूं बल गईयाँ ।
झोल झलेंदी भावो अरजाँ करे मेरे मन वेसरे दा चौंअ,
बधावे नूं बल गईयाँ ।
वेसर कढ़ाइए गढ़ राजपुरे, झोलाँ ठण्डी ठण्डी पौण,
बधावे नूं बल गईयाँ ।
झोल झलेंदी भावो अरजाँ करे मेरे मन सालू दा चौंअ,
बधावे नूं बल गईयाँ ।
सालू रंगाइए गढ़ राजपुरे झोलयाँ ठण्डी ठण्डी पौण,
बधावे नूं बल गईयाँ ।
झोल झलेंदी भावो अरजाँ करे मेरे मन चूड़े दा चौंअ,
बधावे नूं बल गईयाँ ।
चूड़ा कढ़ाइए गढ़ राजपुरे झोलयाँ ठण्डी ठण्डी पौण,
बधावे नूं बल गईयाँ ।

इस प्रकार हमें ज्ञात हुआ कि 'कांगड़ी लोक गीतों' में 'विरह' कितना मार्मिक और 'मिलन' कितना मधुर व सुखान्त है ।

आर्य कन्या पाठशाला,
लोअर बाजार, शिमला ।

कांगड़ा की 'रली पूजन' प्रथा

—वेदभूषण महाजन

जिला कांगड़ा (जिसमें कुल्लू तथा हमीरपुर के जिले भी शामिल हैं) की अविवाहित कन्याओं को इस बात का श्रेय प्राप्त है, कि उन्होंने शताब्दियों पुरानी 'रली (पार्वती) पूजन' की पुरातन प्रथा को इस युग में भी सुरक्षित एवं सजीव रखा है। हर संस्कृति, हर मूल्य एवं हर प्रथा को काटने कुतरने वाला 'बूढ़ा समय' भी बालिकाओं के इस महोत्सव के प्रति उत्साह एवं श्रद्धा को कम करने में असमर्थ रहा है और अब भी यह पर्व इस क्षेत्र में परम्परागत तरीके से उल्लासपूर्वक मनाया जाता है, विशेषकर कांगड़ा, मटौर, चड़ी, बैजनाथ, सुजानपुर तथा कुल्लू में तो भारी संख्या में कन्यायें भाग लेती हैं।

रली उत्सव का स्वरूप एवं इसकी रूप रेखा

रली-पूजन :

प्रति वर्ष चैत्र मास में अविवाहित लड़कियां रली (हिमालय की पुत्री गौरी अथवा पार्वती) का पूजन स्वयं मिट्टी की प्रतिमा बनाकर अपने-अपने घरों में स्थापित करती हैं, तथा १०-१५ की टोलियों में पूजन करती हैं। सप्ताह में एक दिन एतवार या सोमवार को एक समय का व्रत रखती हैं तथा उस दिन नमक नहीं खाती हैं। प्रति दिन उषा काल में बसूटी के सफेद फूल तोड़ कर लाती हैं तथा पूजा में उनका उपयोग करती हैं।

प्रथम पन्द्रह दिन की पूजा 'छोटी रली का पूजन' कहलाती हैं क्योंकि इस अवधि में प्रायः स्वयं घर में बनाई गई शिव-पार्वती की मिट्टी की मूर्तियों की आराधना की जाती है।

इसके पश्चात् कुम्हारों द्वारा निर्मित रंग-बिरंगी खूबसूरत मूर्तियों की स्थापना भी साथ-साथ की जाती है, तथा पूर्ववत प्रातः सायं पूजन किया जाता है तथा आरती उतारी जाती है। इसे 'बड़ी रली' का पूजन कहते हैं।

विवाह :

बैसाख मास की सक्रान्त की पूर्व सन्ध्या में इनका विवाह बड़ी धूम-धाम से रचाया जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे वर-वधू का विवाह होता है। रली एवं शंकर की प्रतिमाओं को 'बटना' लगाया जाता है, तेल-सांद की जाती है, फिर शंकर की प्रतिमा किसी दूसरे के घर में बैंड-बाजे सहित ले जाई जाती है और वहां थोड़ी देर रखी जाती है। तत्पश्चात् लड़कियां इस प्रतिमा को

'दूल्हे' के रूप में 'रली' के घर बारात की शकल में लाती हैं। यहां विद्वान पंडित द्वारा 'विवाह मंडप' में वेद-मन्त्रों के पुनीत उच्चारण से वैदिक रीति अनुसार उनका विवाह किया जाता है, जिसमें 'सप्तपदादि' भी होती है। दूसरे दिन इन दोनों, रली (पार्वती के रूप में) तथा शंकर को, विवाहित रूप में उसी घर में रखा जाता है तथा पूजा की जाती है। इसे 'रली पुरोहनी' (*Rali the-Guest*) कहते हैं। विवाह के तीसरे दिन अर्थात संक्रान्त के दूसरे दिन इन प्रतिमाओं का पास की नदी में जल प्रवाह किया जाता है, जिसे एक मेले के तौर पर उल्लासपूर्वक मनाया जाता है। इसके साथ यह रली पूजनोत्सव सम्पन्न हो जाता है।

रली पूजन की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि

इस सारे उत्सव के पीछे बालिकाओं के हृदय में एक आस्था एवं विश्वास है कि रली (गौरी) तथा शिव-पार्वती की इस प्रकार आराधना-अर्चना से उन्हें मन-चाहा, सुन्दर एवं सुयोग्य वर की प्राप्ति हो सकेगी, जैसे पार्वती जी ने शिवजी को पाया था।

सामाजिक दृष्टि से इस की उपयोगिता यह है, कि बालिकाओं को विवाह सम्बन्धी समस्त रस्मों रिवाजों से पूर्णतय: अवगत कराया जाता है, तथा पूज्य एवं आदर्श नारी 'पार्वती' के दिव्य गुणों की बीज-रूप में स्थापना की जाती है।

इस विवाह तथा सामान्य विवाह में महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि इसमें केवल कन्याओं की ही बारात होती है—कोई पुरुष या लड़का नहीं होता—, दहेज न लिया जाता है और न ही दिया जाता है। मिलनी की प्रथा नहीं होती है। कंवारी कन्या केवल एक बार ही 'विवाह' रचाती है। अन्यथा हर पहलु से यह 'पूर्ण विवाह' होता है, जिसमें निमन्त्रण पत्र भेजे जाते हैं तथा खाने-पीने और धाम की व्यवस्था की जाती है। 'रली' के लिए सुन्दर वस्त्र एवं सारे जेवर—नाक के लिए बालू (सोने की तार प्राय: दी जाती है), हार, चूड़ियां, कोटे, पाज़ेब आदि बनवाये जाते हैं और उसका शृंगार किया जाता है। प्राय: जेवर चांदी या मोतियों के होते हैं।

रली महोत्सव का प्रारम्भ एवं इतिहास

दन्तकथा :

इस सन्दर्भ में जिला गजेटियर *(District Gazetteer)* कांगड़ा में दी गई एक दन्त-कथा का उल्लेख न केवल प्रासंगिक है अपितु आवश्यक भी।

कहा जाता है कि किसी समय एक ब्राह्मण ने अपनी युवा कन्या का विवाह एक बच्चे से कर दिया। जब विवाह की सारी रस्में पूरी हो गईं और बेटी अपने पति के साथ भेजी जा रही थी, तो उसे (लड़की) को असलियत का पता चला। वह अत्यन्त क्षुब्ध एवं दुखी हो गई। उसने

अपने प्राण त्याग देने का मन ही मन निश्चय किया। जब डोली एक नदी के तट पर पहुंची तो उसने कहारों को डोली रोकने का आदेश दिया। फिर अपने भाई बास्तु को सम्बोधित करते हुए कहा, "मेरे भाग्य में लिखा था कि मेरा विवाह एक बच्चे से हो, सो वह हो गया है। अब मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रहना चाहूंगी। मैं चाहूंगी कि भविष्य में मेरे दुर्भाग्य की ठोकरों को स्मरण करती हुई कन्यायें मेरी, तुम्हारी तथा मेरे पति की मिट्टी की प्रतिमायें बना कर समस्त चैत्र मास (मार्च-अप्रैल) में इनकी पूजा करें, जब तक कि उनका विवाह न हो जाये। फिर इनका प्रथम बैसाख को ठीक उसी प्रकार से विवाह किया जाये जैसा मेरा किया गया है तथा बैसाख के दूसरे या तीसरे दिन इन प्रतिमाओं को नदी तट पर डोली में ले जा कर वहां उनका जल-प्रवाह किया जाये। यह सब मेरी (रली), मेरे पति (शंकर) तथा तुम्हारी (भाई बास्तु) की याद में किया जाये। ऐसा करने से यह फल होगा कि इन कन्याओं का कभी भी मेरी तरह अनमेल विवाह नहीं होगा। उन्हें सुयोग्य तथा मन-चाहा वर प्राप्त होगा।"

यह कह कर वह नदी में कूद पड़ी तथा डूब गई। अगले ही क्षण शंकर एवं बास्तु ने भी इसी प्रकार अपने प्राण त्याग दिए। तब से ही रली पूजन, विवाह एवं जल-प्रवाह की प्रथा शुरू हुई है।

धार्मिक पृष्ठभूमि :

किन्तु धार्मिक पण्डितों का मत इस दन्त-कथा से भिन्न है। उनका कहना है कि मां पार्वती तथा शिव शंकर की पूजा तो आदि काल से प्रचलित है तथा पार्वती जी का पतिव्रत स्त्रियों में प्रथम स्थान है। कन्यायें इनका पूजन सुयोग्य पति पाने के लिए करती आई हैं।

इस मत के समर्थन में वे सीता जी का उदाहरण देते हैं कि उन्होंने भी श्रीराम को प्राप्त करने हेतु माता पार्वती की पूजा की थी। तुलसी कृत रामायण की निम्नलिखित पंक्तियों से इसकी पुष्टि होती है :

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥

सीता जी को पार्वती पूजन के लिए उनकी माता जी ने भेजा था। स्पष्ट है कि ऐसा लोक-विरुद्ध नहीं था, अपितु प्रचलित था।

भजन कर सर सखी समेता, गई मुदित मन गौरी निकेता।
पुजा कीन्ह अधिक अनुरागा, निज अनुरूप सुभग वर मांगा।

(इस में दो महत्वपूर्ण बातें स्पष्ट हैं। प्रथम, सीता सखी सहेलियों के साथ पूजन को गईं। दूसरी, उन्होंने मां पार्वती से सुयोग्य मन-चाहा वर मांगा।)

गई भवानी भवन बहोरी, बन्दि चरण बोलीं कर जोरी।

इसमें महत्वपूर्ण नुक्ता यह है कि पहले पार्वती जी को गौरी कहा था जो कन्यापन का संकेत है। किन्तु जब सीता जी ने श्री राम को पुष्प-वाटिका में देख कर मन ही मन उन्हें 'वर' लिया, तो वह 'भवानी पूजा' के लिए जाती हैं, जो 'पति-संयुक्त' रूप है।

सुनु सिय सत्य आशीश हमारी, पूजहि मन कामना तुम्हारी।
नारद बचन सदा शुचि सांचा, सो वर मिलहीं जाही मन राचा।

इसमें इस बात की पुष्टि होती है कि उनकी अर्चना सफल एवं सुफल सिद्ध हुई है।

धार्मिक मतानुसार गौरी पूजन सीता काल से भी पूर्व प्रचलित था, किन्तु सीता जी द्वारा पूजन की पुष्टि तो स्पष्ट ही है। सीता जी ने स्वयम्बर के समय शिव जी की सच्चे हृदय से पूजा की थी कि वह अपने धनुष को फूल की तरह हलका कर दे, ताकि श्रीराम इसे सुगमता से तोड़ सकें। सम्भवत: इसी भावना के अनुरूप ही रली एवं शिव की पूजा की जाती है।

ऐसा लगता है कि इस प्रथा को लोक-रूप तथा सांस्कृतिक पुट्ट देने हेतु पूर्ण विवाह का रूप दिया गया है जिसका आरम्भ दन्तकथा के अनुसार हुआ हो।

रली पूजन एवं रली विवाह गीत :

रली पूजन तथा विवाह के गीतों का जो कन्यायें भारी उत्साह से सामूहिक रूप में गाती हैं, इस सारे उत्सव में एक विशेष एवं महत्वपूर्ण स्थान है। अत: इनके कुछ अंशों का उल्लेख प्रासंगिक ही होगा।

रली को प्रात: उठाने का गीत :

उठ बो रलिये सुतड़िये, तेरी जागन बेला होई भलिये,
तेरा तोता करदा चुरभुरियां, तेरी मैना जपदी राम दा नाम।

(सुतड़िये=सोई हुई)

रली के हाथ मुँह धुलाने के समय का गीत :

कुथु रलिया हथ मुंह धोते, कुथु सैह मैल गवाई है?
गंगा रलिया हथ मुंह धोते, जमना मैल गवाई है।

(कुथु=कहां, सैह=वह)

दरेक पूजन के गीत :

इस समस्त उत्सव की अवधि में दरेक वृक्ष की टहनी घर-आंगन में तुलसी की तरह रखी जाती है तथा कन्यायें मास भर प्रत्येक प्रात: इसकी पूजा करती हैं, तथा गाती हैं :

दरेका ओ दरेका दरकानु लगे, दरेका लगड़े दरकानु,
पुतां ते पुतां ओ खिन्नु खेले, धियां गुडियां पटार,
पुतां ते पुतां ओ नीला घोड़ा, धियां चौकदे डोले।

(दरकानु=दरेक के बीज, लगड़े=लगे, पुतां=लड़के, बच्चे, खिन्नु=गेंद, पटार=पटारी)

इसके अतिरिक्त असल विवाह के बुटने, तेल, सांद तथा लग्न के समय के गीत तथा गालियां आदि भी गाई जाती हैं तथा विवाह की ही सजधज और वातावरण इस उत्सव को कोरी कल्पना के स्तर से उठा कर वास्तविकता एवं यथार्थता के रूप में ढाल देते हैं।

पत्रकार,
धर्मशाला।

अरकी जनपद में प्रचलित लोक गीत

—शंकरलाल शर्मा

लोक गीतों का सम्बन्ध ग्रामीण लोक जीवन से है। ये गीत उतने ही प्राचीन हैं, जितना झरनों का कल कल नाद, कूंजों में पक्षियों का कलरव या समीर की सिहरन। कलियों की मुस्कान व किरणों से नृत्य के साथ ये उभरते रहे। किसी विरहणी के आंसुओं में झरते रहे, तो कहीं बादलों की बांहों में झूलते प्रिय संदेश सुनाते रहे।

इनके रचनाकार अज्ञात हैं। लोक-गीत लिखकर नहीं रखे गए। ये विरासत में अगली पीढ़ियों को मिलते रहे। इनकी गेयता, सरलता व जन भाषा इन्हें प्रवाहित करती रही। मन को छूते भाव अपनी अबोधता और सरसता लिए एक टीस, एक कसक छोड़ते हैं जिससे इनका प्रभाव आज भी उतना ही गहरा है जितना उसके रचनाकार के मन में उसकी रचना करते समय रहा होगा। लोक-गीत अनायास ही लोक गायकों के कंठहार बन गूंजते रहे।

इन गीतों का विषय वही बन गया जो मन पर ऐसी छाप छोड़ गया जिससे बेचैनी हुई। किसी विरही की व्यथा, प्राकृत-रंग अथवा किसी जन साधारण समस्या को थोड़े से शब्दों में व्यक्त करने में लोक-गीतों की क्षमता अभूतपूर्व है। दो पंक्तियां जो भाव समेट रखती हैं उन्हें ग्रन्थों में व्यक्त कर ले तो भी अपूर्णता बनी रहेगी। इन गीतों में भोगे हुए यथार्थ की अनुभूति होती है। जब-जब इन्हें सुना जाता है ये अनूठे भाव तथा अपना स्थाई बिम्ब मानस पटल पर उभारने की क्षमता रखते हैं।

दूर-दूर तक फैले पहाड़ों और घाटियों में यहां बसने वाले भोले-भाले निवासी खेतों में काम करते, पशु चराते या घास काटते अपने चारों ओर शांत वातावरण में तन्मय होकर लोक-गीत गाते रहते हैं। कहीं मेलों में भी युगलबन्दी में इन्हें गाते हैं। लम्बी तान में छोटी-छोटी टुकड़ियां यह सिद्ध करती हैं कि इन्हें सुनने के लिए कोई दूर प्रतीक्षा कर रहा है। अरकी जनपद में मुख्य रूप गंगी, लोका, बाह्मणा रा छोरू, घर से बाहर, तथा संस्कार गीत, गुग्ग', बरलाज आदि गीत सामूहिक रूप से घरों में गाए जाते हैं।

१. गंगी :

अरकी जनपद में गाया जाने वाला सदा-बहार लोक-गीत गंगी केवल इस क्षेत्र में ही नहीं अपितु सारे हिमाचल प्रदेश में लोक प्रिय है। गंगी दो लड़ी का वह हार है जिसे हर कंठ से लगे देखा जा सकता है। इसकी पहली पंक्ति एक प्रतीकात्मक बिम्ब का काम करती है जो गायक के मूल भाव की भूमिका बांधने में सहायक होती है। भाव का मूल दूसरी पंक्ति में व्यक्त रहता है। चूंकि यह लोक-गीत जिसे सुनाया जा रहा होता है वह दूरी पर होता है अतः उसका ध्यान

आकर्षित करने के लिए प्रथम पंक्ति अपनी भूमिका निभा कर गौण रूप ले लेती है। प्रथम पंक्ति की लय सुनकर सुनने वाला वास्तविक भाव ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाता है। इस प्रकार दूरी का व्यवधान पाट लिया जाता है।

प्रथम पंक्ति को प्रायः दोहरा दिया जाता है ताकि सुनने वाला बेखबर न रहे। इस दोहराने की लड़ी को अपने प्रिय के सम्बोधन विशेष से जोड़ा जाता है। जिससे सानिध्य का आभास होता है। ये सम्बोधन प्राय: 'मांऊआं' पापिया, सजना, अथवा प्यारेया जैसे शब्द होते हैं। गंगी के बोलों की बानगी देखिए :—

१. फूल फूली रह्या पार टिकरे।
डाली शुकी पाणीये बिना मेरा जिऊ शुक्या तेरे फिकरे॥

२. हरे चादरू री लड़ी कापणी,
बालका री लगी ममता, लग्या दिल न बछोड़े पापणी।

उपरोक्त उदाहरणों में स्पष्ट है कि प्रथम पंक्ति एक बिम्ब उभारती है। यह बिम्ब प्रिय का ध्यान आकर्षित करता है। अगली पंक्ति गायक की मनोदशा या भावों का विकास करती हुई बिम्ब को गौण करके मूल भाव का बसन्त महका देती है। यह मर्म को छूने की क्षमता रखता है। इसे सुन कर प्रिय तड़प उठता है। प्रत्युत्तर में वह भी वैसा ही भाव भरा बोल हवा में गूंजा देता है। इस प्रकार गीतों की अटूट योजना वातावरण में तैरती रहती है जो पहाड़ों के शांत और शीतल जीवन में संगीत भरती हुई यहां बहने वाले नालों झरनों का साथ देती रहती है।

ऊपर पहले उदाहरण में लोक-गायक एक फूल का वर्णन करता है जो अपने यौवन की पूर्णता पर है। उसका वास्तविक भाव अगली पंक्ति में है। प्रेमी के वियोग में वह वैसे ही सूख चला है जैसे बिना पानी के पौधा। प्रकृति और प्रेमी की मनोदशा का कितना अनूठा विरोधाभास अंकित हुआ है। जो बिम्ब प्रथम पंक्ति उभारती है वह दूसरी में तिरोहित हो जाता है। दूसरे बोल में भी प्रथम पंक्ति में ओढ़नी की काट छांट कर सुन्दर बनाने का भाव है। अगला बोल प्रेमी से आग्रह करता है कि लड़कपन से चले आ रहे प्रेम बन्धन को न तोड़ना।

लम्बी लय में जब यह गीत गाया जाता है तो सुनते ही बनता है। इसके गाने की लय को आवश्यकतानुसार कम भी किया जा सकता है। सम्भवतः श्रोता और गायक की दूरी ही इसका निश्चय करती होगी। आजकल इसे तोड़कर गाने का चलन हुआ है। जैसे चौपाई को तोड़ कर सोरठा बनता है ठीक उसी प्रकार इसमें भी 'तोड़' दिया जाता है। ऐसा लोक मत है कि जेठ मास में जो 'बाड़ी मेला' होता है वहाँ गंगी की लय का एक रूप-विशेष प्रयुक्त होता है। यही वर्ष भर के लिए चल पड़ता है। अगले बर्ष उसी मेले में बदल कर गाया जाता है और यह क्रम चलता रहता है। विभिन्न लयों में गाने से उसमें नवीनता तथा ज़ायका बना रहता है।

मेले में हिंडोलों पर झूलते हुए तथा मेलों की समाप्ति पर घरों को लौटते हुए गंगी के बोल दूर-दूर तक सुने जा सकते हैं। शायद ही कोई ऐसा जनपद निवासी हो जिसने गंगी के बोलों की गुनगुनाहट न की हो। समय के साथ इस लोक-गीत में प्रतीकों का फेर बदल चलता रहता है और यह कभी अपने लोक-मानस पद से च्युत नहीं हुआ।

२. लोका :

अरकी जनपद में दूसरा प्रमुख लोक-गीत 'लोका' है। 'लोका' का शाब्दिक अर्थ है अजनबी या परदेशी। यह गीत नायक पर एक व्यंग्य रूप लिए होता है। नायक मिलने का समय नहीं निकालता, मिलन का अंतराल बड़ा होता है, सौत के चक्कर में है या फिर भूल गया है। पैने उलाहने भरे बोल लिए 'लोका' नायिका की मनोव्यथा का वर्णन करने वाला गीत है। नायक भी गाता है। परन्तु यह लोक-गीत वास्तव में नायक की अनुपस्थिति में उस तक संदेश पहुंचाने की शैली में गाया जाता है। नायिका संदेशवाहक को समझा बुझा कर अपनी दशा का भाव बांधने का प्रयास करती है। ठीक उसी प्रकार जैसे कालीदास का यक्ष मेघदूत के माध्यम से अपनी व्यथा व्यक्त करता है। 'लोका' के दो बोल प्रस्तुत हैं :—

१. काची कलि तोड़िगा आपु गया शिमले,
कलिया रे वैणे ताखे पाप हो लोका।

२ हाथ पैर धोंदिए पले पले रोंदिए,
केसरी जे लग्या वरजोग जी लोका।

प्रथम बोल में नायिका स्वयं को उस कच्ची कली से जोड़ती है जिसे अभी खिलना था परन्तु नायक उसे मसल कर प्रदेश चला गया। वह उसे केवल यह कह कर संतोष करती है कि उसे इसका बड़ा पाप चढ़ेगा। बय-संधि के प्रवेश द्वार पर ही सब कुछ लुट जाने पर भी नायिका उसे बड़ा श्राप नहीं दे पाती।

दूसरे बोल में नायिका विरह व्यथा से बड़ी व्याकुल है। वह अपने पर संयम नहीं रख पाती पर दूसरे उपहास न करें इसलिए वह रोती उस समय है जब जल लेकर हाथ पैर धोने का उपक्रम करती है। यदि कोई देख भी ले तो उसे पानी का भ्रम हो, आंसू न समझे। उसकी व्यथा की चरम सीमा है। उसे लगता है वह वैरागन हो गई है और आस-पास सब कुछ पीला नजर आता है।

जहां तक भावों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है यह बोल किसी तरह भी बिहारी के दोहों से से पीछे नहीं। अर्थ गहनता, प्रतीक योजना या बिम्ब योजना वैसी ही प्रखर है और सुनने वाले पर अमिट छाप छोड़ जाती है। जिस लम्बी और रूक-रूक कर गाई जाने वाली लय का प्रयोग 'लोका' में होता है ऐसा लगता है मानो नायिका अपने कलेजे के टुकड़े बाहर धकेल रही हो। 'लोका' में भाव-व्यंजना देखते ही बनती है।

३. बाह्मणा रा छोरू :

यहां का तीसरा लोक-गीत 'बाह्मणा रा छोरू' है। इस गीत की हर लड़ी का आरम्भ 'बाह्मणा रेआ छोरूआ' से शुरू होता है। अन्त में 'तू तो बेईमान छोरूआ' गाकर बन्द पूरा होता है। बीच में जो कड़ी रहती है उसी में भाव व्यक्त किया जाता है। दो उदाहरण देखिए :—

१. बाह्मणा रेआ छोरूआ,
पड़ा बूरा लग्या ओ माऊंआँ,
रोई हाऊं जियो दे,
तू तो बेईमान छोरूआ ।

२. बाह्मणा रेआ छोरूआ,
निउवाँ वे ओ हाँडणा, ओ माऊंआं,
भरीए बन्दूके बैरी फिरदे,
तू तो बेईमान छोरूआ ।

पहले बोल में नायिका, नायक की याद में तड़पती है । वह मन ही मन रो लेती है । उसे 'बेईमान' कहती है । दूसरे बोल में नायक को दुश्मनों से सावधान रहने की चेतावनी देती है । ऐसा व्यवहार करने का आग्रह करती है ताकि दुश्मन जो बन्दूकें लेकर उसे मारने के लिए मौका ढूंढते फिरते हैं उनसे बचा जा सके । यह नायिका-प्रधान गीत है । उस गीत में नायिका नायक से उलाहने, ताने, खीज, रूठना, मनाना, सीख जैसे भावों को सरलता से व्यक्त करती है ।

इनके अतिरिक्त सामुहिक रूप से 'गुग्गा' व 'बरलाज' जैसे लोक-गीत जो ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित हैं चाव से समय-समय पर गाए जाते हैं । 'गुग्गा' गीत बरसात में और 'बरलाज' सर्दी में सुना जा सकता है । चैत्र मास में नववर्ष के उपलक्ष्य में तूरी लोग 'महीना' गाते हैं । संस्कार गीत जन्म अथवा विवाह जैसे शुभ अवसरों पर गाए जाते हैं । हिमाचल प्रदेश के अन्य क्षेत्रों में प्रचलित लोक-गीत भी यदा-कदा सुने जाते हैं ।

गांव व डाकघर मांजू, अरकी
जिला सोलन, (हिमाचल प्रदेश)
१७३२०८

हिमाचल प्रदेश की देवी उपासना के सन्दर्भ में देवी पूजा की व्यापकता

—डा० विद्याधर शर्मा गुलेरी

देवभूमि हिमाचल प्रदेश में प्राय: सर्वत्र कोटखाई की देवी, नन्दराडी, पुजाली, देवी दुर्गा क्यारी और नन्दनी देवरी खनेटी से लेकर त्रिगर्त (कांगड़ा) की चामुण्डा, ब्रजेश्वी, मातेश्वरी, ज्वालाजी, चिन्तपुर्नी, नागनी तक नानाविध देवियों की मान्यता उपासना सत्य ही दृष्टिगत होती है। भौगोलिक परिस्थितियों, श्रमजन्य आजीविका में निर्वाह, दैवी आपत्तियों से रक्षण की कामना तथा धार्मिक प्रवृत्तियों के व्यापक प्रभाववश हिमाचल प्रदेश में विशेष कर देवी पूजा अधिक प्रसरित तथा व्यवहृत है। इसी सन्दर्भ में जब हम देवी पूजा में व्यापक प्रयोगों को परखते हैं तो देवी पूजा की महत्ता की सहज ही प्रतीति होती है।

मानव ने आदि काल से कोई न कोई उपासना या पूजा का विषय अवश्य रखा है। विभिन्न देशों की पुराण कथाएं इस बात की साक्षी हैं कि मनुष्य समाज की राजनीति और कूटनीति, छद्म और पाखण्ड, दम्भ और अहङ्कार तथा प्रणय और अभिसार तक उसके उपास्यों (देवों) में परिवर्तित हुए। अत: कोई आश्चर्य नहीं कि मनुष्य अपने लिंग भेद को देख कर अपने उपास्यों में भी उसे ढूंढ निकालता और देवों की कल्पना के साथ साथ देवियों का भी निर्माण कर डालता। इसी लिए हम देखते हैं कि प्राय: प्रत्येक देश में देवियों की कल्पना की गई है। मिश्र में आइसस, फिनीशिया में अशर्तत, ग्रीस में देमेतर, रोम में साइबेल तथा जर्मनी में फ्रिग जैसी देवियों की कल्पना विभिन्न देशों में हुई। आर्थर अखेलन[1] के अनुसार देवी वस्तुत: ईश्वर का ही मातृ रूप है। उत्तरी यूरोप में प्राचीन धर्म में प्रमुख १२ देवों और आठ देवियों के अतिरिक्त अनेक अन्य देवियां मानी जाती थीं।[2] ग्रीस में अकेले ज्योस (द्यौ) के ही अनेक पत्नियां थीं, जिन में अन्य नामों के अतिरिक्त मेतिस (मति), थेमिस जैसी देवियों की भी गणना हो जाती है। इनके अतिरिक्त ऐटे, प्रोफैसिस, चारिस, अर्थेनी, पर्सेफोन आदि अनेक देवियां ग्रीस में पूजी जाती थीं। रिटराइट की देरकेटी, सीरिया की ऐश्तोरेथ तथा फ्रिजिया की सारबेले देवी ग्रीस की एफ्रोडाइट के रूप में देखी जा सकती हैं और विद्वानों का मत है कि इस देवी की पूजा किसी न किसी रूप में यहूदी धर्म की पूर्व अरब देशों में भी की जाती थी।[3] बेबलोन की इश्तर सीरिया की आर्तमिस तथा नार्वे की दूदुन का नाम भी विश्व की प्रसिद्ध देवियों में गिना जा सकता है।[4]

---

1. हिम्स टु गोडेस, प्रिफेस, १।
2. ए शोर्ट हिस्ट्री आफ रिलजन्स (ई०ई० वेलेट कृत) पृष्ठ १२६।
3. फौक्स आर्यन माइथौलोजी पृष्ठ ५१ से ६८।
4. थार्प नार्दन माईथीलोजी जि० पृष्ठ १११ से १२५ (द्रष्टव्य)।

पूजा की लोकप्रियता की दृष्टि से आज हमारे देश में सर्वाधिक मान्यता चार देवियों की है—दुर्गा, काली, लक्ष्मी और सरस्वती। सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित देवी आराधना के सन्दर्भ में देवियों की भरमार है। ललिता सहस्रनाम में एक हजार नाम गिनाये गए हैं। यद्यपि वहां वे एक ही देवी के नाम से समझे जाते हैं परन्तु जन साधारण की मान्यता में उनमें से अधिकांश पृथक रूप में देवियां हैं। कुछ जातियों में और हिमाचल प्रदेश में भी प्रत्येक कुल की अलग देवी होती है जिसे कुलदेवी कहा जाता है। आज भी गांव में शीतला, संकटा, गौरी दुर्गा, लक्ष्मी, काली चण्डी, सरस्वती आदि देवियां अलग-अलग मानी जाती हैं। कांगड़ा जिला त्रिगर्त में चिन्तपुर्नी, ज्वालाजी ब्रजेश्वरी देवी के मन्दिरों में आश्विन तथा चैत्र मास में नवरात्र के दिनों में जिस देवी की पूजा की जाती है उसको केवल दुर्गा या माय देवी के नाम से ही सर्वसाधारण जानता है और अनेक देवियों की मान्यता के साथ-साथ एक धुंधली सी मान्यता यह भी है कि ये सब एक ही देवी के अनेक रूप हैं। यह देवी अपने भक्त के शरीर को आविष्ट करके उसके माध्यम से भूत तथा भविष्य की बातें बतलाती हुई तथा लोगों को संकट निवारण के लिए उपाय सुझाती हुई भी सुनी जाती है। इस समय देवी को किसी नाम विशेष से अभिहित नहीं किया जाता। लोक-कथाओं में जिस देवी का नाम प्रायः आता है वह पार्वती है जो अर्द्धरात्रि के समय चिन्ता (संसार के दुखियों का लेखा जोखा) लेने निकलनी है और दुखियों के दुख को देख कर द्रवित हो जाती है और अपने पति महादेव को उसके दुःख निवारण के लिए विवश करती है।

देवी पूजा की प्राचीनता और प्रमुख देवियां :

भारतीय जीवन में देवी पूजा की जड़ बहुत गहरी है।[1] ईसा से एक शताब्दी पूर्व का एक यूनानी लेखक बताता है कि बहुत प्राचीन काल के दक्षिणी अन्तरीप पर कन्याकुमारी देवी की पूजा होती आ रही थी। जैन और बौद्ध धर्मों ने ईश्वर तक को छोड़ दिया परन्तु देवी की कल्पना यहां भी प्रवेश कर गई और बौद्धों की 'तारा' तथा जैनों की 'श्यामा' के बहुत से उल्लेख मिलते हैं। हरिवंश महाभारत पुराण उत्तरी शैवागम, दक्षिणी शैवागम, वैष्णवागम तथा शाक्तागम में देवी की उपासना सांगोपांग रूप में मिलती है। ईसा से २५०० वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी की सभ्यता में भी देवी को बहुत महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ था।[2] मोहनजोदड़ो की खुदाई में बहुत सी स्त्री-मूर्तियां मिली हैं जो कि विद्वान के मतानुसार महामातृदेवी की मूर्तियों से मिलती जुलती हैं जो बिलोचिस्तान पश्चिम एशिय, भूमध्य सागर के इजियन तट मैसीयोरामिया, कैस्पियन समुद्र तट, एशिया, माइनर सीरिया, फिलस्तीन साइप्रस, यूनान के कुछ द्वीपों तथा मिश्र में बहुत संख्या में मिली हैं। हड़प्पा[3] से प्राप्त एक लम्बी मुहर पर एक ऐसी देवी की मूर्ति है जिसके योनि भाग से एक असुर निकल रहा है। यह सम्भवतः पृथिवी देवी का चित्र है।

---

1. केनिथ डब्ल्यू मार्गन द रिलिजन आफ द हिन्दूज, पृष्ठ ६६।
2. राधाकुमुद मुकर्जी कृत हिन्दु सभ्यता, पृष्ठ २२ तथा देखिए कर्नैथ कृत द रिलिजन आफ हिन्दूज पृष्ठ ६६।
3. द्रष्टव्य–राधाकुमुद मुकर्जी कृत हिन्दु सभ्यता, पृष्ठ २२।

प्रमुख देवियों में दुर्गा, काली, लक्ष्मी और सरस्वती के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। इनमें से अष्टभुजा या दशभुजा दुर्गा, सिंहवाहिनी, महिषमर्दिनी और चतुर्भुजा काली, कपालनी आदि नाम से देवी के भीषण रूप को प्रकट करती हैं। वीणा-पुस्तक धारिणी हंसारूढ़ा सर्वशुक्ला सरस्वती देवी के मृदु तथा मधुर रूप की द्योतक है। लक्ष्मी और सरस्वती की क्रमशः धन तथा विद्या के लिए ही उपासना की जाती है। चेचक के निवारण के लिए उत्तर भारत में शीतला और दक्षिण भारत में ज्येष्ठा की पूजा बहुत प्रचलित रही। इसके अतिरिक्त कालीघाट (बंगाल) की काली, आसाम की कामाख्या, उड़ीसा की विराजा, मिर्जापुर (उ०प्र०) की विन्ध्यवासिनी, हरिद्वार की चन्डी, पंजाब की तथा दक्षिण की कन्याकुमारी देवी का विशेष महत्त्व है। यद्यपि शाक्तों के अनुसार सारे भारत में देवी के ५१ स्थान अत्यन्त पवित्र हैं क्योंकि इन स्थानों पर विष्णु चक्र से खण्डित होकर सती के शरीर खण्ड इतस्ततः जा गिरे थे। तन्त्र साहित्य[1] में काली, तारा, महाविद्या, सोडषी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता विद्या, धूमावली, बगला, सिद्धविद्या व कमलात्मिका आदि देवियां हैं।

पुराणों की देवी व ऋग्वेद की देवियां :

दुर्गासप्तदशी[2] में देवी को एक ओर तो शेषशायी विष्णु को जगाने के लिए प्रजापति की प्रार्थना पर उनके नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षस्थल से निकलने वाली कहा गया है और दूसरी ओर देवी की प्रार्थना पर विष्णु के क्रुद्ध होने पर न केवल विष्णु के अपितु ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि सभी देवों के तेज से निर्मित होने वाली कहा गया है।

जिस देवता का जैसा रूप, जैसी वेशभूषा और जैसा वाहन था ठीक वैसे ही साधनों से सम्पन्न होकर उसकी शक्ति असुरों से युद्ध करने के लिए आई।[3] ऋग्वेद में श्रद्धा, इडा, शची, इन्द्राणी, वरूणानी, अग्नायी, सूर्या, वृषकणाई, यमी, रोदसी, अश्विनी, अदिति, रात्रि, उषा, मति, धी, महीभारती, आपः सरस्वती आदि अनेक देवियों का उल्लेख ऋग्वेद में है। आम्भृणीवाक् का सूक्त (१०, १२५) तो सभी देवी भक्तों में देवी सूक्त के रूप में ही समादृत होता है। ऋग्वेद में ही नहीं अपितु चारों वेदों में तथा वैदिक साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण ४० देवियां वर्णित हैं जिनके एक ही स्थान पर चित्रण, शोध व व्याख्यान की नितान्त आवश्यकता है।[4]

वैदिक देवियों की स्वरूप परीक्षा से ऋग्वेदगत अनेक रहस्यों पर प्रकाश पड़ता हुआ प्रतीत होता है। अतः वैदिक कर्मकाण्ड दर्शन तथा पुराण के क्षेत्र में यह विषय बहुत कुछ लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। देवी की कल्पना शाक्त वैष्णव तथा शैव सम्प्रदायों में भी है और देवियों के प्रायः बहुत से नाम भी वही हैं। अतः बृहती, इन्द्राणी, शची, माया, स्वाहा, उषा, अदिति, स्वधा, रात्रि, प्रमति, अनुमति, मनीषा, श्रद्धा, इडा, यमी, सरस्वती, भारती, दक्षिणा, दीक्षा, गौरी, राष्ट्री, वाक्,

---

1. Tantra and its philosophy, Bina Chakrabarti, Proceedings and translations of A.I.O.C., 19th session P. 147.
2. दुर्गासप्तदशी २, ६ से १६ ततः समस्त देवानां तेजोराशि सयुद्भवाम्।
 तां बिलोक्य मुदंप्रापु रमरा महिषार्दिता ॥
3. दुर्गासप्तदशी २, ८, १२, २३.
4. द्रष्टव्य लेखक का मूल शोध प्रबन्ध "A Study of Vedic Female Deities in Vedic and Epic Literature." P. 11-49.

सर्पराज्ञी, ब्रह्मजाया, वरूणानी, अश्विनी, विराज, अग्नायी, आप: नदी आदि अनेक प्रसिद्ध देवियों के साथ-साथ कृपा, इषु, निष्पृति, तविषि, सुद्रुति, सीता, षडुर्वी, स्वधिपति कृपा जैसी अप्रसिद्ध तथा अरण्यानी एवं औषधि जैसी पिवित्र देवियों की चर्चा भी आवश्यक है। विश्वदेव की भांति देवियों में भी षडुर्वी देवपत्नयः, तिस्र: देवी:, द्वारदेवी: नृपत्नी: जैसे देवियों के गण हैं। द्यावा-पृथ्वी तथा उषारात्री जैसे देवियों के जोड़े हैं तथा आप: जैसी बहुवचनान्त नान रखने वाली देवियां भी हैं। प्रचलित प्रयोग अनेक हैं। हिमाचल प्रदेश की देवी पूजा के सन्दर्भ में चामुण्डा व विभिन्न तीर्थ स्थान हैं यथा—त्रिगर्त में त्रिन्तपुर्नी, माता ज्वाला जी, ब्रजेश्वरी देवी, कांगड़ा माता, भडवार में नागनी माता। यहां हमें यह विषय देवी पूजा की व्यापकता के परिप्रेक्ष्य में ध्येय होगा।

देवी पूजा की व्यापकता के कुछ प्रमाण :

देवी पूजा की व्यापकता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि हिंगलाज से लेकर कामारका तक और कन्याकुमारी से काश्मीर तक ऐसा कोई स्थान नहीं जहां देवी पूजा के कोई न कोई चिन्ह अब भी न मिलते हों। राजस्थान में तो गांव-गांव में देवी के छोटे-छोटे मन्दिर हैं।

उत्तर प्रदेश मध्य भारत तथा अन्य स्थानों में जहां मन्दिर कम हैं वहां ऐसी जातियां पाई जाती हैं जो डोलियों में लिए देवी प्रतिमा के दर्शन कराती हैं और देवी के भजन गाकर सुनाती हैं। हिमाचल प्रदेश में ज्वाला जी, चामुण्डा, मातेश्वरी, ब्रजेश्वरी तथा चिन्तपुर्नी आदि देवियों की उपासना सर्वप्रचलित है। ऐसा कौन सा गांव होगा जहां कि हिन्दु लोग नवरात्र के दिनों में (जो ब्रत नहीं रखते वे भी) कन्याओं को देवी मान कर भोजन न कराते हों। पुराणों में[1] सभी स्त्रियों को देवी का ही रूप बतलाया गया है। पुराणों का जिन लोगों ने नाम भी नहीं सुना होगा वे भी प्राय: स्त्रियों को देवी कहते सुने जाते हैं। कुछ लोग तो देवी कुमारी कन्या के रूप में भी दीप नैवेद्य आदि से विधिवत् पूजा करते हैं। वेदों में जिन द्वार देवियों का वर्णन आता है उनके प्रसंग को देखते हुए इन देवियों को दरवाजे की अधिष्ठात्री देवी तो नहीं माना जा सकता परन्तु आजकल विवाह के अवसर पर जो द्वार पूजा की रस्म कहीं-कहीं होती है उसमें स्वयं दरवाजे की पूजा न होकर दरवाज़े पर आए हुए वर की पूजा अवश्य होती है। अत: वेदों की द्वार देवियां सम्भवत: ऐसी देवियां हैं जो या तो विश्व रहस्य की 'द्वार' स्वरूप समझी जाती हों या मनुष्यदेह की द्वा: नामक विद्वति से सम्बन्धित शक्तियां हों।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनमानस में देवी-पूजा की व्यापकता सर्वत्र उपलब्ध होती है। हिमाचल प्रदेश में घर-घर होने वाली कुलदेवी या अन्य देवी रूपों की पूजा भी देवी शक्ति के एकमेव शक्तितत्व की उपासना का ही पूर्ण परिवर्तित रूप है जिसके मूल में एक ऐसा देवीतत्व है जो कि पुराणों तथा आगमों की देवी उपासना या शक्ति पूजा का आधार है अथवा परमेश्वर के मातृरूप को सामने प्रस्तुत करता है।

चन्द्रभवन गुलेर, कांगड़ा
हिमाचल प्रदेश

1. तुलना कीजिए—विद्या समस्ता तव देविभेदा।
स्त्रिय: समस्ता सकला जगत्सु ॥

2. इयं विद्वतिर्वैद्वा: ऐतरेयउपनिषद्-१, २.

देव धरा–चम्बा

–खेमराज गुप्त 'सागर'

बात ५५० ईस्वी की है। जब भगवान राम के दूसरे पुत्र कुश के वंशज राजा मरू ने ब्रह्मपुर आज के भरमौर क्षेत्र में अपना राज्य स्थापित किया। छोटा सा राज्य। मरू से पहले ६७ पीढ़ियां अपनी गंगा घाटि में राज्य कर चुकी थीं। मरू पीढ़ी में ६८वें थे। मरू ऊपरी गंगा की घाटियों से अपने छोटे पुत्र जयस्तम्भ को साथ लेकर रावी (इरावती) घाटी में आए और ब्रह्मपुर के बहुत ही छोटे-छोटे क्षेत्रों के राजाओं को सहज में ही जीत लिया और अपने छोटे से संगठित राज्य की स्थापना की।

ब्रह्मपुर का यह राज्य आज की भरमौर उपतहसील और बुड्ढल तथा तुन्दाल नदियों के साथ-साथ छत्राड़ी क्षेत्र तक सीमित था ह्यूनसांग (६४३ ई०) ने अपने यात्रा वृतान्त में लिखा है कि ब्रह्मपुर का राज्य लगभग ३०० ली (तकरीबन ५०-६० मील) में फैला है।

मरू धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृति के मालिक थे। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र जयस्तम्भ को राज्य भार सौंप दिया और अपने आप वापिस ऊपरी गंगा की घाटियों, जिसका नाम शायद 'कल्प' था की ओर लौट आए।

जयस्तम्भ के बाद जलस्तम्भ और महास्तम्भ ने ब्रह्मपुर पर राज्य किया। इन तीनों के बाद तीन और शासक हुए जिनके नाम हैं आदित्य वर्मन, बल वर्मन और दिवाकर वर्मन। दिवाकर वर्मन के पश्चात् लगभग ६८० ई० में मेरु वर्मन ब्रह्मपुर के राजा हुए। मेरु वर्मन देवी शक्ति के भक्त थे। देवी की कृपा से इन्होंने अपने राज्य का विस्तार करने में सफलता पाई और आज के कुल्लू क्षेत्र तक राज्य की सीमाओं का विस्तार किया।

मेरु वर्मन एक अच्छे योद्धा ही नहीं थे बल्कि एक उच्च कोटि के कला प्रेमी भी थे। इन्होंने छत्राड़ी के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण करवाया और भरमौर के मनीमहेश मन्दिर, लक्षणा देवी मन्दिर, गणेश और नृसिंह मन्दिर का निर्माण करवाया। मनीमहेश मन्दिर के आगे बनी नन्दी की अष्टधातु की मूर्ति भी मेरु बर्मन ने ही बनवाई। सूर्य मन्दिर भी इन्होंने बनवाया।

७६० ईस्वी में अजय वर्मन ब्रह्मपुर के राजा हुए। ऐसी धारणा है कि अजय वर्मन के शासन काल में गद्दी, ब्राह्मण और राजपूत दिल्ली से आए और यहीं के होकर रह गए। अजय वर्मन शिव भक्त थे उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्र सुवर्ण वर्मन को सौंप दिया और खुद रावी और बुड्ढल के संगम पर शिव उपासना के लिए चले गए। सुवर्ण वर्मन के बाद लक्ष्मी वर्मन राजा बने।

लक्ष्मी वर्मन के समय में ब्रह्मपुर में हैजा और प्लेग जैसी महामारियां फैलीं। किरा जाति के लोगों ने स्थिति का फायदा उठा कर ब्रह्मपुर पर हमला कर दिया। राजा लक्ष्मी बर्मन

युद्ध में मारे गए। उनकी रानी गर्भवती थी। वजीर और पुरोहित रानी को लेकर कांगड़ा की ओर निकल पड़े। ऊपरी रावी के ब्रेहटा क्षेत्र में रानी ने एक बालक को जन्म दिया, जिसका नाम मूष वर्मन रखा गया। इस नामकरण के पीछे भी एक कहानी है।

पालकी उठाने वालों ने जब यह देखा कि पालकी का वजन कम हो गया है तो उन्होंने वजीर और पुरोहित को इस बारे में बताया। उन्होंने रानी से पूछा और साथ ही कह दिया कि आपके गर्भ में राज्य का वारिस था। उसी की खातिर तो हम आपको सुरक्षित स्थान पर ले जा रहे थे। रानी ने बताया कि एक गुफा में उसने एक बालक को जन्म दिया था और वहीं छोड़ आई थी। वजीर और पुरोहित जब दियोल के पास ग्राम ग्राहे में उस गुफा के अन्दर गए तो वहां बहुत से चूहों ने बालक को सुरक्षित रखा था। मूषों द्वारा सुरक्षित रखे जाने के कारण ही राजपुत्र का नाम मूष वर्मन रखा गया। बालक को सुकेत के राजा ने शरण दी, पालन पोषण किया, शिक्षा दी और अपनी पुत्री का विवाह भी मूष वर्मन से कर दिया। अपनी सेना भी उसे दी और मूष वर्मन ने उसी सेना की सहायता से ब्रह्मपुर का अपना राज्य वापिस लिया। मूष वर्मन के बाद चार और राजा हुए और पांचवे हुए साहिल वर्मन। साहिल वर्मन का कार्यकाल ९२० ईस्वी है।

इन्हीं राजा साहिल वर्मन ने अपनी राजधानी ब्रह्मपुर से बदल कर आज के चम्बा नगर की स्थापना की और अपनी नई राजधानी बनाया।

राजा साहिल वर्मन के कार्यकाल में ही चौरासी सिद्धों ने ब्रह्मपुर राज्य की यात्रा की थी। इसी कारण ब्रह्मपुर की राजधानी को चुरासी (चौरासी) नाम दिया गया और सारे राज्य को चौरासी परगनों में भी बांटा गया। परम सिद्ध योगी चर्पटनाथ ने राजा साहिल वर्मन को अपना शिष्य बनाया और उन्हें कई प्रकार की विधाओं में प्रवीण बनाया। योगीराज चर्पटनाथ के आशीर्वाद स्वरूप ही साहिल वर्मन का स्थान—स्थान विशेषवत पाया है। चम्बा के लक्ष्मी नारायण मन्दिर के साथ-साथ अन्य कई देवालयों का निर्माण भी राजा साहिल वर्मन ने करवाया और मुख्य स्रोत थे योगीराज चर्पटनाथ।

राजा साहिल वर्मन की पत्नी रानी नयना ने पानी की खातिर अपना जीवन दे डाला था। और रानी से 'सूही माता' बन गई। उनके बलिदान की कहानी से कौन वाकिफ नहीं है। रानी चम्पयाली सूही माता की ही पुत्री थी, चम्पावती भी योगीराज चर्पटनाथ की शिष्या थी। उन्हीं चम्पावती के नाम पर चम्बा राज्य का नामकरण हुआ। पहले चम्पक प्रदेश, फिर चम्पा और कालान्तर में चम्बा।

राजा साहिल वर्मन ने ही अपनी नई मुद्रा 'चकली' का प्रचलिन किया। चकली पर नाथ साम्प्रदाय की मुन्दराएं अंकित करवाई, जोकि शुरू-शुरू में अपनी श्रद्धा का प्रतीक थीं, और बाद मे अन्य राजाओं ने मुन्दराओं के साथ-साथ विष्णुपाद की चकली अंकित करवाई।

लक्ष्मी नारायण जी के मन्दिर के अलावा, राजा साहिल वर्मन ने अपने गुरु योगीराज चर्पटनाथ की देख रेख में चम्पावती मन्दिर, चन्द्रगुप्त, कामेश्वर, त्रिमुख, गणपति मन्दिरों और प्रतिभाओं का भी तिर्माण करवाया। साहो स्थित चन्द्रशेखर देवालय का निर्माण भी राजा साहिल वर्मन ने ही करवाया था।

राजा साहिल वर्मन एक कुशल योद्धा भी थे। उन्होंने कई छोटे-छोटे राणाओं को सहज में ही जीत लिया था। साथ ही उन्होंने त्रिगर्त के एक बड़े भाग को भी जीता। कुल्लू पर भी अधिकार किया। गुरुषका (उत्तर पश्चिम के हमलावर जिन्होंने ८७१ ई० में काबुल को भी जीता था) हमलावरों को हराया था।

आज का चम्बा नगर जहां पर साहिल वर्मन अपने राज्य की राजधानी बनाना चाहते थे, ब्राह्मणों की सम्पत्ति थी। राजा ने ब्राह्मणों को जमीन का मूल्य चुकाने के साथ-साथ यह वचन भी दिया था कि नगर में होने वाले प्रत्येक विवाह के मौके पर ब्राह्मणों को पांच चकलियां देय होंगी। उन वचनों का निर्वाह आज तक होता आ रहा है।

मूर्तियों के निर्माण के लिए संगमरमर विन्ध्या पर्वत श्रेणियों से मंगवाया गया था। पहली बार राजा साहिल वर्मन ने अपने नौ पुत्रों को संगमरमर लाने के लिए भेजा। वापिसी पर डाकुओं ने उन्हें लूटा और मार दिया। राजा साहिल वर्मन ने युवराज युगाकर वर्मन को संगमरमर लाने के लिए भेजा। युवराज युगाकर जब संगमरमर की शिला ला रहे थे तो उन पर भी डाकुओं ने हमला किया था लेकिन गोसाईं साधुओं ने उनकी सहायता की और युगाकर डाकुओं को मार भगाने में सफल हुए। शिला को जब तोड़ा गया तो उसमें से एक मेंढक निकला। उस शिला से लक्ष्मी नारायण जी की मूर्ती बनाने की योजना छोड़ दी गई। हां उससे त्रिमुख गणपति और श्री लक्ष्मी जी की प्रतिमाएं बनाई गईं और तब एक बार फिर युगाकर ने विन्ध्या पर्वत श्रेणी की कठिन यात्रा की और दूसरी शिला लाए। उसी शिला से लक्ष्मी नारायण जी की मानवाकार प्रतिमा का निर्माण किया गया।

उम्र के अन्तिम हिस्से में महाराज साहिल वर्मन ने (९४० ई०) राज्य भार युवराज युगाकर वर्मन को सौंप दिया और खुद योगीराज चर्पटनाथ के साथ साधु के रूप में तपस्या रत रहे।

सभी प्राचीन राजाओं ने चम्बा नगर में या आस पास के क्षेत्रों में मन्दिरों का निर्माण करवाया। अकेले चम्बा नगर में ही दस शिखर मन्दिर हैं। चम्बा को यह सौभाग्य प्राप्त है कि आज भी वहां कम से कम तीन ऐसे पुराने शक्ति मन्दिर हैं, जिनमें लकड़ी पर नक्काशी का काम बस अपनी मिसाल आप है। उत्तरी भारत में शायद ही कोई इतना प्राचीन मन्दिर होगा, जितने प्राचीन कि चम्बा के तीन शक्ति मन्दिर हैं। ये तीनों मन्दिर हैं :—लक्षणा देवी मन्दिर भरमौर, शक्ति मन्दिर छत्राडी और मृकुला मन्दिर उदयपुर (अब लाहुल स्पीती जिला)।

नगर में स्थित देवी चण्डी का मन्दिर एक पहाड़ी पर बनाया गया है। इस मन्दिर के प्रांगण में खड़े होकर सारे नगर का नजारा किया जा सकता है। देवालय में लगे बड़े घण्टे की आवाज सारे नगर में सुनाई देती है।

केवल मात्र नगर या आस पास के स्थानों में ही देवालय हों ऐसी बात नहीं है। चुराह क्षेत्र में बैरवाली देवी का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। 'बैरवाली' देवी को नगर स्थित चण्डी देवी की बहन माना जाता है। वर्ष में एक बार बैरवाली देवी की प्रतिमा को उठाकर चम्बा लाया जाता है और चण्डी के मन्दिर में रखा जाता है। पन्द्रह दिनों तक दोनों बहनों (चण्डी–बैरवाली) का श्रद्धा भाव से पूजन होता है।

सोम

चुराह में कई और भी शक्ति मन्दिर हैं जिन की जन-मानस में बड़ी श्रद्धा है। चुराह (तीसा सदर मुकाम) से त्रेला और अलवास होते हुए जब जाएं तो रास्ते में भाण्डौली नाम का स्थान आता है। भाण्डीली में एक बड़ा पुराना गोनपा है। इस गोनपा की अपनी ही निराली आन, बान और शान है अधिकांश बौद्ध खम्पा है। लेकिन 'बत्र' के बौद्ध भी इस गोनपा में रहते हैं। यहां की बुद्ध प्रतिमाएं बड़ी विशाल और कलात्मक हैं।

साच जोत भाण्डौली के आगे है। साच पर्वत को लांघने के बाद ही हम पांगी पहुंचते हैं। पांगी में नाग देवता, तथा शक्ति के देवालय हैं। हुण्डाण और सुराल में बौद्ध गोनपा है। नागों में जरहियूं, कुढहियूं, देथनाग के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। शक्ति मन्दिरों में बलीन, शीतला, चौण्ड, मिन्धल के मन्दिर ऐसे हैं जिनमें श्रद्धालुओं की बड़ी आस्था है।

मिन्धल वासिनी देवी के नाम से ही पूरे गांव का नाम मिन्धल रखा गया है। यह वह स्थान है जहां केवल मात्र एक बैल (चूंर) से हल चलता हैं। ऐसा विश्वास है कि अगर दूसरा बैल जोड़ा जाये तो वह मर जाता है।

चम्बा के सभी चौरासी परगनों में शायद ही कोई ऐसा गांव होगा जहां किसी न किसी देवता का स्थान (मन्दिर) न हो। और अगर चम्बा को 'देवधरा' कहा जाए तो कुछ भी गलत न होगा।

६, टाप फ्लोर,
दी माल, शिमला।

हिमाचली में आम फल सम्बन्धी शब्दावली

—श्याम कुमारी डोगरा

भारतीय जन जीवन एवं साहित्य में आम की सुन्दरता का वर्णन विविध रीति और गुणों के साथ किया गया है। इसे सहकार रसाल और अति सौरभ अर्थात् बड़ी सुगन्धि वाला फल कहा गया है। हिमाचल की उपत्यकाओं से कन्याकुमारी तक समस्त भारत में आम के सघन वृक्ष पाये जाते हैं। आम का वृक्ष कहीं तो दो मीटर और कहीं तीस मीटर की ऊंचाई तक पहुंच जाता है। चण्डीगढ़ के निकट बडैल गांव में छप्पर नाम का विशाल आम का वृक्ष आज भी विद्यमान है। डा० महेन्द्रसिंह रन्धावा के अनुसार यह आम का वृक्ष लगभग २५ मीटर ऊंचा और ४ मीटर चौड़ा है। इसके तने का घेरा लगभग १० मीटर है। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद नई दिल्ली से प्रकाशित श्री स०रा० गंगोली तथा अन्य लेखकों की सुन्दर कृति 'दी मैंगो' (१९५७) के छठे पृष्ठ पर इस विशाल आम के वृक्ष का चित्र दिया हुआ है। इसकी १५० क्विंटल के लगभग फलों की उत्पादन क्षमता बतायी गई है। इस प्रकार भारत में १००० मीटर की ऊंचाई तक आमों के विविध आकार प्रकार और गुण मिलते हैं। आम की लगभग १४०० जातियां गिनाई गई हैं। इसके अतिरिक्त जंगली जातियां अनेक हैं। जो गणनातीत हैं। श्री गंगोली ने २१० प्रकार के आमों के रंगीन चित्र उक्त पुस्तक में प्रस्तुत किए हैं।

हिमाचल प्रदेश के १००० मीटर से ऊंचे स्थानों पर सेब ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया है और अन्य भागों में आम फलों का राजा माना गया है। वैसे तो भारत में गोवा के आम संसार के फलों में सबसे उत्तम और स्वादिष्ट माने जाते हैं परन्तु जलवायु की दृष्टि से हिमाचल के आमों का भी अपना विशेष महत्व है। हिमाचली भाषा में व्यवहृत शब्दावली में आम के वृक्ष तथा फलों के महत्व प्रदर्शन का यत्न इस लेख में किया गया है :—

अम्ब शब्द का प्रयोग आम के वृक्ष और फल के लिए है। अम्बी शब्द का प्रयोग भी इसी रूप में प्रियता वाचक है। रसदार, लम्बा, पतला फल और वृक्ष अम्बी कहलाता है। कहीं अम्बी शब्द कच्चे आम के व्यवहार में भी पाया जाता है।

आम वृक्ष की आयु सीमा का अनुमान अपनी बगिया में इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है।

बुर्जगाँ दे समें दा अम्ब :—जो आम सौ साल से भी पुराना हो उसे यह संज्ञा दी जाती है।

पड़बाब्बे दा अम्ब :—प्रपितामह के समय का आम।

जोग्गी अम्ब :—किसी योगी साधु सन्त की कुटिया में लगाया हुआ पुराना आम।

इसी प्रकार आम के वृक्षों का नामकरण सिद्ध देवता स्थान आदि से किया जाता है यथा—गुग्गे आला़ अम्ब, रिहड़ीया आला़ अम्ब, भेठ्ठी आला़ अम्ब, नौणे आला़ अम्ब, खड्डु आला़ अम्ब आदि।

आम के वृक्ष की लकड़ी गृह-निर्माण तथा अन्य कृषि आदि उपकरणों के प्रयोग में लाई जाती है। डाब, कड़ी, भित्त (दरवाजा) दुआरसाख (चौखट), पटड़ा, हल बल आदि में इस लकड़ी का प्रयोग किया जाता है।

इन्धन में आम की लकड़ी शुभ मानी जाती है। यज्ञ, विवाह आदि संस्कारों में आम की समिधा अग्नि प्रज्वलित करने के लिए पवित्र समझी जाती है।

अम्ब-दाड़न पूजा : विवाह आदि संस्कार में दाडिम के साथ आम वृक्ष की पूजा और परिक्रमा मंगल कामना के लिए की जाती है।

पतर-डालू : पंच पल्लव में आम की शाखा और पत्ते शुद्धि के साधन माने जाते हैं। इन्हें ओली-घड़ी या मिट्टी के कलश में रखा जाता है और चारों ओर गृहशुद्धि में जल से मार्जन किया जाता है।

मन्दिर या घर के द्वार पर आम के पत्ते लाल डोरी से बांध कर माला के रूप में लटकाये जाते हैं। यज्ञवेदी या विवाह मण्डप में चारों ओर आम की शाखाएं लगाकर शोभा बढ़ाई जाती है।

त्वचा रोग में आम के पत्ते अन्य द्रव्य के साथ पीस कर लगाने से उपचार किया जाता है।

सुक्के पत्तर : दुषित वातावरण में दुर्गन्ध दूर करने के लिए आम के सूखे पत्ते जला कर धुआं किया जाता है जिससे विषैले कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

अम्ब :

आम को फलों का राजा कहा जाता है। ग्रीष्म और वर्षा ऋतु का यह प्रमुख फल है। ज्येष्ठ मास से लेकर आश्विन मास के आरम्भ तक फलों का बहुविध प्रयोग खान-पान में किया जाता है। तदनन्तर सारे वर्ष आमों के आचार, मुरब्बा आदि का प्रयोग होता है। धनी-निर्धन, आबाल-वृद्ध, नर-नारियां, पशु-पक्षी, कीट आदि चर जगत में आम उदरपूर्ति के साथ स्वास्थ्यवर्धक एवम् आयुवर्धक माना जाता है। आम के यथा विधि सेवन से रक्त-विकार तथा अन्य रोगों का नाश होता है। शिव स्तोत्र में यहां तक कहा गया है कि फल है तो आम है, यह अमृत फल है। यदि इसे शक्कर और घी मिला कर रोटी के साथ सेवन किया जाये तो इसकी उपमा अन्य किसी वस्तु के साथ नहीं हो सकती है :—

इत्तर वृत फलं फलमेव तन्नृप रसालफलं त्वमृतं मतम्।
यदि तदीयरसः सितया युतः सघृत पोलिकास्य न चोपमा॥

लम्मण (आकार में लम्बा); पेड़ा अम्ब, चीकला, कुण्डला, धारीदार। रंग के आधार पर आमों के इस प्रकार पुकारे जाते हैं—सिन्धूरी, लाल्लू (लाल), बसन्ती, प्यूला (पीला), चिट्टा, योगिया आदि। पक्षियों के नाम से भी इन्हें पुकारा जाता है जैसे—तोत्ता, पिद्दू (छोटे आकार का)।

गधा अम्ब : कांगड़ा में रंझू गांव में एक किलोग्राम के लगभग तोल का आम होता है जो सावन में पकता है और उसे गधा आम कहा जाता है। इससे बड़ा आम भारत में सहारनपुर में पाया जाता है जो दो किलोग्राम के लगभग होता है उसे गधा आम से भी बड़ा आम हाथी झूल कहा जाता है।

मंगणू : इसका सम्बन्ध खटमल से जोड़ा है क्योंकि इससे खटमल जैसी दुर्गन्ध आती है।

ढेंचूच्ची : इसके दो मुंह होते हैं। बच्चे इसे पाने का बड़ा प्रयास करते हैं। इसे चील्लद भी कहा जाता है।

स्वादिष्ठ होने के कारण आमों का साधारण वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है :—

अत्रित : जो बड़ा स्वादिष्ठ हो।

मिट्ठा : मीठा, रसदार आम।

कागजी : जिस का छिलका पतला हो और रस अधिक हो।

जटाधारी : जिसमें रस कम हो, गूदा अधिक हो पर लेशदार हो। तन्तु दान्तों में फंस जाते हैं।

खण्ड : जो चीनी की तरह मीठा हो।

मखीर : जो शहद की तरह मीठा हो।

कलमी आमों की उपज भी अब धीरे-धीरे बढ़ रही है जिस में बम्बई आम प्रमुख है।

यदि आम खट्टा हो या स्वाद रहित हो तो उसे ऐसे पुकारा जाता है :—

खट-मिट्ठा : जो कुछ तो खट्टा हो और कुछ मीठा हो।

टीट-टीटम्हाणी : बहुत खट्टा आम।

पाणी : जिस का स्वाद पानी जैसा हो।

गोहा : गोबर जैसी गन्ध वाला फीका आम।

अंग वर्णन :

आम के अंग प्रत्यंग के वर्णन में इन शब्दों का व्यवहार है :—

सिक्कड़ : आम का छिलका। यह औषधि निर्माण में विशेषतः पेट रोग के लिए उपयोगी माना जाता है। इसे चमड़ा रंगने के काम में भी लाया जाता है।

बीण्डू : आम का अग्र भाग जिसे तोड़ कर फैंका जाता है और रस निकाला जाता है।

कट्ट : यदि आम के अग्रभाग को न तोड़ा जाय तो इसका दूध ओठों और मुंह में जहां भी लगेगा वहां व्याधि और जलन पैदा करता है।

कौआ : आम की गुठली। कहीं-कहीं इसका आटा पीसा जाता है। इसका चूर्ण औषधि निर्माण में उपयोगी होता है। आम की गुठली फिसैटी का काम भी देती है गुठली को दो फाड़ कर मुण्डित मुण्ड से सीकरी या मैल रगड़ कर निकाली जाती है। पशु इसे निगल जाते हैं तो कभी यह गले में फंस जाती है। इसे निकालने में बड़ा कष्ट होता है।

पीपणी : भादों या सावन में जब आम की गुठली धरती में जम जाती है तो बच्चे इस कोमल गुठली को दो फाड़ कर घिस कर और बीच में पत्ता रख कर बाजा बजाते हैं और खेल खेलते हैं।

कुर : आम का फूल या बौर जो सरसों के दाने के बराबर होता है।

अम्बी-आम्र मज्जी : छोटे-छोटे आम जो तनिक खटास वाले झुण्ड में लगे होते हैं।

पलास : यदि आम के पत्ते नये कोमल हो जाएं तो आम फूलता फलता नहीं है।

फल पकने की पक्रिया :

कुर से लेकर पक्के आम तक की प्रक्रिया के वर्णन में इन शब्दों का व्यवहार है।

पयोल। पड़ोल धूप से एक ओर आम पक कर काला हो जाता है और स्वाद में जरा मीठा होता है। इसकी गुठली कच्ची होती है।

डिडरा : यह अभी तक पूरा पका नहीं होता है। दो चार दिन बाद रखने से पक जाता है।

राड : पत्थर मार कर गिराया हुआ आम।

ल्होल् : वृक्ष पर चढ़ कर हिलोर देकर गिराया आम।

डालपक : शाखा पर लगा अपने आप पका आम खाने में स्वादिष्ट होता है :

टपका : पक कर स्वयं गिरने वाला आम।

पायल-पैल : कच्चे आम तोड़कर गेहुं, घास या धान के पराल में डाल दिए जाते हैं। ये उष्णता से कुछ दिनों में पक जाते हैं। इनमें खटास नहीं रहती है। ये आम देर तक रखे जा सकते हैं।

आम के फल रसदार, मांसल, जटिल आदि रूप में होते हैं इनके लिए व्यवहार में ये शब्द हैं :—

गुढा-गिद्धा : गूदेदार आम। गूदा पीला या सफेद होता है। यह स्वाद में रूचिकर होता है।

जटा : इसका छिलका मोटा रेशेदार होता है। जटा दांतों में फंसती है। ऐसा आम खाने में कठिन होता है।

सजरा : फल अभी ताजा होता है। यह पानी में ठण्डा करवाया जाता है।

बाही : बासी फल जो रात भर रखा जाता है और प्रातः चूसा जाता है।

त्रूड़ी : कोमल आम का छिलका पतला होता है, यह रस से भरा होता है। तनिक दबाया कि रस पिचकारी की तरह निकल कर अगल बगल में सान देता है। इसी कारण विदेशी लोग जो आम चूसने के अभ्यस्त नहीं हैं वे इसे स्नान वेला का फल (बाथ रूम फ्रूट) कहते हैं।

आचार व्यञ्जन :

ज्येष्ठ महीने में कच्चे आमों का प्रयोग अधिक होता है। आषाढ़, श्रावण और भाद्रपद में पक्के आम खूब खाये जाते हैं। वर्ष के शेष महीनों के लिए आचार, मुरब्बा बना लिया जाता है।

माकड़ी-बाकड़ी : कच्चे आमों को सिप्पी या दराती से छील कर और चीर कर धूप में सूखा लिया जाता है।

चोई : आम की चीर जो अभी तक सूखी न हो।

अमचूर : सूखे आम की फांकों को घराट में पीसा कर चूर्ण बना लिया जाता है जिसके प्रयोग से खट्टा रैंटा आदि के व्यंजन बनते हैं।

चार-कुतरा : आम के छोटे-२ टुकड़े बनाकर आचार तैयार किया जाता है। रूचि के अनुसार सौंफ, गरी, दाख, छुहारा आदि सूखे मेवे इसमें डाले जाते हैं।

चारी अम्ब : यह आम देर से पकता है। इसकी उपयोगिता आचार या मुरब्बा के लिए ही श्रेष्ठ मानी जाती है।

म्हाणी : अमचूर या कच्चे आमों को उबालकर या गर्म राख में झुलसकर पानी में निचोड़ा जाता है। नमक मिर्च आदि मिलाकर भोजन के साथ सेवन किया जाता है।

म्लांज्जी : कच्चे आम चूल्हे की गर्म राख में झुलसे जाते हैं। मिट्टी की कुण्डी में इनका रस निकाला जाता है। नमक मसाले और तनिक गुड़ शक्कर मिला कर भोजन के साथ खाया पिया जाता है। इसके सेवन से गर्मी का ताप शान्त होता है और नींद खूब आती है।

तरस्याई : कच्चे आमों की चटनी पदीना, मिर्च डाल कर स्वादिष्ट बनती है। इसे मुस्का भी कहते हैं। छील कर कच्चे आम साग, लसहयाडे (लसूड़े), कराल (कचनार) तथा अन्य व्यञ्जनों में भी डाले जाते हैं जिस से तृष्णा का शान्त होना माना जाता है और भोजन में रुचि बढ़ती है।

छिच्छा-छच्छा : कच्चे आमों को छील कर और कूट कर नामक, मसाले और गुड़ डाल कर सघन बनाया जाता है। इसे भटूरू या छल्ली की रोटी के साथ खाया जाता है। यात्रा में रोटी के साथ इसे सुविधा से रखा जाता है।

खटरस : आमों में दही दूध आदि तरल पदार्थ नमक, मसाला मिला कर सेवन करने से उदर विकार दूर होता है।

टाटरी : गलगल की तरह आमों के रस को परिपक्क कर हाण्डू पारू में या बोतल में रखा जाता है। जब चाहो एक या दो बून्द डाल कर व्यञ्जन को खट्टा बना लो। परन्तु यह गलगल के रस की भान्ति बहुत दिनों तक नहीं ठहरता है।

अम्बुआ : पक्के आमों का रस निचोड़ कर मिर्च, मसाला मिला कर खुले तेल में छौंक लगा कर बनाया जाता है। दही या छाछ लगाने से यह स्वादिष्ट व्यञ्जन बन जाता है जो भात या रोटी के साथ बड़े चाव से खाया जाता है।

समोस्सा : आम पापड़ जो सारा साल घर में मिलता है और हाट में बिकता है। आमों का रस निचोड़ कर थाली में या सलेट में धूप में सुखा कर बनाया जाता है। स्वाद के लिए गरी, दाख, छुहारे के खण्ड भी ऊपर से डाल दिये जाते हैं जो आम पापड़ में जम जाते हैं। सौगात के रूप में बन्धु बान्धव समोस्से का आदान प्रदान करते हैं। पहाड़ी यात्रा में मुंह में रख कर यह घुलता रहता है जिससे गाड़ी मोटर के तेल की गन्ध से जी नहीं घबराता है और वमन नहीं होती है।

सेवन क्रिया :

चूपणा : पहले दिन पक्के आम वृक्ष से उतार लिये जाते हैं। इन्हें बालटी में या तसले में भीगने डाल दिया जाता है। प्रातः उठ कर जी भर चूसा जाता है और फिर गर्मी शान्त करने के लिए ठण्डा दूध पिया जाता है। तदनन्तर स्नान किया जाता है। नदी जहां पास हो वहां बालू में इन्हें पानी का घेरा बना कर दबा दिया जाता है और नहाते समय चूसा जाता है।

व्याधना : अधिक आम चूसने से या पाचन ठीक न होने से उदर विकार और रक्त व्याधि हो जाती है। अनुकूल न होने से आमों का सेवन नहीं किया जाता है और चौमासा में इन्हें देख-देख कर जी तरसता है।

उपकरण :

पादप के पैदा होने से बढ़ने तक आम के वृक्ष की सदा रक्षा की जाती है। उस सम्बन्ध में शब्दों का व्यवहार इस प्रकार है :—

झिल-बाड़ : जहां आम का पौधा उगता है वहां बाड़ लगा दी जाती है।

किरणू : वायु के संचार के लिए बांस की जाली लगाई जाती है। अब लोहे के तार की जाली भी व्यवहार में आ रही है।

करणू-करंडू : आम बटोरने के लिए बांस की छोटी टोकरी।

टोकरू : बांस का बड़ा टोकरा जिसमें एक दो क्विटल आम आ जाते हैं।

छड़ : बांस की रंगीन टोकरी जिसमें मीठे और विशेष आम उपहार स्वरूप अपनी बिटिया, सगे सम्बन्धी या मित्रों को भेजे जाते हैं। यदि आमों का उपहार वस्त्र आभूषण सहित ससुराल में गई बिटिया को न पहुंचे तो उसे आस पास के ताने सुनने से लज्जा का अनुभव होता है। व्यास पूर्णिमा को गुरु पूजा होती है। शिष्य अपने गुरु जी की सेवा में इस दिन स्वादिष्ट आम श्रद्धा पूर्वक भेंट करते हैं।

छडोल्लू : बांस की छोटी रंगीन टोकरी जो बन्धु बान्धवों में गिन कर आम बाँटने के काम आती है।

ढांगू-ढांगी : रम्मणा जड़ समेत पूरा सूखा हुआ बांस जिस की टेढ़ी मेढ़ी जड़ से आम धीरे से उतारे जाते हैं।

छिक्कू-छक्कू : चार पांच आम टहनी से उतार कर उसमें लाये जाते हैं। इसके चारों ओर डोरी या जाली होती है। जिससे आम भूमि पर नहीं गिरने हैं।

आम के शत्रु :

जो मीठा होता है उसके शत्रु अधिक होते हैं। आम के शत्रुओं के लिए इन शब्दों का व्यवहार है :—

झक्ख-नेहरी : अभी आम्रमंजरी झूम रही होती है जो दर्शकों के मन को भाती है विशेषत: कोयल को दूर से बुलाती है, उसे झंझावात नष्ट करने के लिए आ जाती है।

पथरैह : आम अभी कच्चे ही होते हैं। बच्चे पत्थर मार कर उन्हें गिराना आरम्भ कर देते हैं। कभी पत्थर से एक दूसरे का सिर फूट जाता है। कभी आम के वृक्ष से डाली टूट जाए तो हड्डी पसली टूट जाती है।

खाढ्ढड़ : पक्षी कोर कोर आमों को गिराते हैं जिनमें दिन में तोते और रात को लमकाह (चमगादड़) अधिक हानि पहुंचाते हैं। इनके कुतरे और जूठे आम खाढ्ढड़ कहलाते हैं।

द्रोंहला, धरमोड़ी : जब आम पक जाते हैं तो मधु-मक्खियां और ततैय्या इन पर मण्डराना आरम्भ कर देती हैं। कीड़ू-मकोड़ू-चिथलू इसके अतिरिक्त विषैले कीड़े पत्ते-पत्ते पर छाये होते हैं।

डुड-झोर : आम के वृक्ष के नीचे या बीच में सर्प भय रहता है। सुगन्धि और मिठास के कारण सांप इसमें बास करने का यत्न करता है।

भुड्ड : आम पुराना हो जाए तो घुण से सूखना आरम्भ हो जाता है। कभी मूल से शाखा तक दीमक भी लग जाती है जिस से आम का नाश हो जाता है। इसका तना जर्जर और खोखला हो जाता है जिसे भुण्डणा कहते हैं।

घर में उपयोगी लकड़ी, बल, बलॅ, कात, डाब में भी घुण लग जाता है जिससे छत या द्वार का नाश हो जाता है।

इस प्रकार आम के वृक्ष और फल के पद-पद पर शत्रु हैं परन्तु आम अपनी मधुर प्रकृति का त्याग नहीं करता है। फलों से नम्र होकर सबका स्वागत करता है छोटा हो या बड़ा हो सब इसकी महिमा का गान करते हैं। प्रदेश में आम से सम्बन्धित अनेक लोक-गीत, आत्म-अभिकाएं तथा अन्य प्रसंग प्रचलित हैं। हमारे रीति रिवाज, आहार विहार, कथा त्यौहार, आदि सब शुभ कार्यों में आम के पत्ते से लेकर फल तक सब कुछ मंगल कामना के लिए उपयोगी माना जाता है।

मुगल साम्राज्य आमों का स्वर्ण काल रहा है अनेक बाग लगाए गए। भांति-२ के पेड़ लगाए गये और उनमें स्वादिष्ट आम फूले फले। मुगल सम्राट अकबर ने 'लाल बाग' नामक एक लाख पेड़ों वाला आमों का बाग दरभंगा के समीप लगवाया था। यह उनकी लोक-प्रियता का एक सुन्दर उदाहरण है।

आम के वृक्ष का काटना एक बड़ा पाप समझा जाता है। स्वप्न में, शकुन विचार में आम के वृक्ष का काटना व्याधि या दुःख लाने वाला समझा जाता है। यात्रा में यदि आम के दर्शन हो जाये तो शुभ शकुन समझा जाता है। आम के पत्तों से जल पूर्ण कलश यदि द्वार पर रखा जाए तो यात्रा सफल समझी जाती है।

लोकोक्ति :

लोकोक्तियों में आम को काटना मूर्खता कहा गया है—

अम्बां बड्डी अक्के जो बाड़ देणा।

आम के वृक्ष को काट कर अक के पौधे की रक्षा करना अर्थात् छोटी वस्तु के लिए बहुत कुछ खो देना।

अपने काम से जहां प्रयोजन बतलाना हो तो वहां आम चूसने की लोकोक्ति सुनाई जाती है—

अम्ब चूपणे कि गल्लां करनीयां।

अर्थात् अपने काम से प्रयोजन होना चाहिए इधर उधर की हांकने से नहीं।

लोक-गीतों में आज भी आम की लहलहाती आम्र मज्जरी का संगीत प्रतिध्वनित है—

अम्बुए देया बूटेया तेरे पतले नी डाले।

इस लोक में तो आम के सेवन से कल्याण है ही परन्तु आम का सिंचन परलोक में गये पितरों को भी तृप्त करता है जैसा कि आम को जल द्वारा सींचने के संस्कृत में यह मधुर लोकोक्ति प्रेरित करती है :—

एका क्रिया द्वयर्थ करि च सिद्धा।
आमृश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता।

राजकीय उच्च पाठशाला
ऊना (हिमाचल प्रदेश)

बिलासपुर के लोक-गीत

कन्या से नारी जीवन का महत्व

—अमरनाथ वशिष्ठ

मानव सृष्टि के समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता है। पाषाण युग से लेकर अब तक मनुष्य किन करवटों व परिस्थितियों को लांघ कर पहुंचा है, इसका पता हमें पुरातन इतिहास के पन्नों को उलट कर चलता है। भारत एक महान राष्ट्र है और कई क्षेत्रों में विश्व में सर्वोच्च है। प्राकृतिक रूप से यह विश्व का पहला राष्ट्र है जिसमें छः ऋतुओं का साम्राज्य है। इसमें कहीं पहाड़ हैं तो कहीं समतल मैदान। इसमें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं, परन्तु फिर भी एकता के प्रतीक हैं। प्रत्येक भारतीय नागरिक को अपने धर्म सम्प्रदाय में रहने व अपने धार्मिक कार्यों, रिवाजों को मनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। खैर यह इतिहासकारों की बातें हैं, मैं कोई इतिहासकार नहीं कि समूचे राष्ट्र पर कुछ लिखू, पर अतिश्योक्ति न होगी अगर एक नवोदित राज्य हिमाचल की संस्कृति पर विचार किया जाए। आज से चार-पांच वर्ष पूर्व यह केन्द्र प्रशासित राज्य रहा, लेकिन यहां के कुशाग्र बुद्धी मुख्य मन्त्री जी के अथक प्रयासों से यह पूर्ण राज्य को प्राप्त हुआ। परिणाम स्वरूप यह नन्हा सा राज्य कई अन्य राज्यों से आगे बढ़ गया है। इसका सारा श्रेय हमारे माननीय डा० यशवन्तसिह परमार मुख्य मन्त्री जी को जाता है। यहां के लोग सीधे सादे व तर्क बुद्धि प्रधान हैं। प्राकृतिक इस पहाड़ी प्रदेश की व्यवस्था भी एक अपने में ही अनूठी है। हर राज्य में प्रत्येक चार या पांच कि०मी० के पश्चात् प्रादेशिक भाषा में परिवर्तन आ जाता है, और यह स्वाभाविक भी है। यहां के रिवाज, रीतियां हमारे प्राचीन साहित्य की प्रतीक हैं। कन्याओं की शादियों या रिवाजों के परिवर्तन केवल मात्र समयानुकूल ही हैं, न कि पुरातनता का परिहास। जब भी कभी किसी लड़की की शादी नियत होती है उसी दिन से मां बाप सम्बन्धी इसी चिन्ता में रहते हैं कि सब मंगलमय और शान्तिमय सम्पूर्ण हो। सत्य भी है क्योंकि आज का आधुनिक युग कई प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ कर आगे निकल गया है।

शनैः-शनैः समय समीप आता जाता है और कन्या के माता, पिता व अन्य सम्बन्धी चिन्तित होते जाते हैं।

सर्व प्रथम हमारी संस्कृति के आधार पर कुछ तेल डालने की प्रथा है। इसके अन्तर्गत लड़की को तीन, पांच व सात दिन के तेल पड़ते हैं। इसमें एक विशेष व्यवस्था होती है वह यह कि 'कुलजा' का आगमन उसी दिन से मान्य होता है जिस दिन लड़की को तेल डालते हैं। कन्या पक्ष के लोग जो अधिक समीप के सम्बन्धी होते हैं वे भूमि आसन पर सोते हैं। औरतों के समूह-गान जिनके सुनने से समाज में यह पूर्णतय समझ लिया जाता है कि अमुक कन्या की शादी है। जैसे :—

पैहलड़ा तेल कुड़िया रिया माए संजोया...ऽ...ऽ।
दूजड़ा तेल कुड़िया रे बापुए संजोया...ऽ...ऽ।

इन्हीं मधुर ध्वनियों के साथ कन्या को जो काले कम्बल में एक विशेष प्याजी रंग की चादर के नीचे अन्दर बाहर स्नान हेतु लाया जाता है। और वह विशेष स्थान जहां पर स्नान करवाते हैं वहां पर एक काठ निर्मित चौकी स्थापित की होती है जो चारों तरफ से वन्हें' (एक विशेष पौधा) की हरि-हरि डालियों से सुसज्जित की होती है। उस समय के लोक गान :—

आंगणां चौकड़ किन्हें वे कीत्या,
कीन्हें डोलेया पाणीं......... ।

सेतिये सहरूएं तिड़-तिड़ लाई......
कुड़िया रिये माऊ पिड़-पिड़ लाई... ।

तदुपरान्त ज्यूं ही कन्या स्नान करके वापिस यथा स्थान आती है तो औरतें कार्य रूप में कन्या पक्ष से कहती हैं :—

''असें शक्कर लैंणी, सणयां वे छोल्यां'।

तब तक यह तान्ता बन्धा रहता है जब तक लड़की के लिए बारात नहीं आ जाती। समीप सम्बन्धी व मां बाप यह अपना समाजोचित कर्तव्य समझते हैं कि तेल पड़ने के बाद वर या कन्या को सूखी रोटी नहीं दी जाये। प्रत्येक समीप सम्बन्धी एक-एक समय का भोजन सुन्दर ढ़ंग से परोस कर लड़की को देना पुण्य समझते हैं। सत्य भी है कि फिर बेचारी का कभी-कभी किसी सुअवसर पर ही आना हुआ करेगा। यह जीवन की एक कड़ी समाप्त हो जाती है। प्रत्येक पुरुष को इसका आभास होना चाहिए। मेरे विचार में यह विधि की बिडम्बना है कि आज भी हम नारी जीवन को वह स्थान नहीं दे पा रहे हैं जो देना चाहिए।

भले हो नारी स्वयं अपनी योग्यता से पुरुष से किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं है। जब बारात कन्या के लिए आ जाती है तो सभी सम्बन्धी यह अपना कर्तव्य समझते हैं कि किसी प्रकार की वर पक्ष वालों की अवज्ञा न हो, भले ही वर पक्ष वाले अनुचित भी हों। कितनी दयाद्रपूर्ण बात है, एक तो कन्या पक्ष वाले दान करते हैं, सैंकड़ों वस्तुएं साथ में दहेज दी जाती हैं, और फिर उस कन्या की कुक्षी से वर पक्ष वालों के घर का चिराग जलता है, फिर भी कन्या पक्ष वालों के सिर पर वर पक्ष वालों की जूती हो रहती है। तात्पर्य यह कि चाहे लड़की को फिर कितना ही संकट क्यों न हो वह बेचारी बेजुबान होकर वहीं की होती है। बारात आंगन में पहुंच जाती है तो स्त्रियां समूह गान में :—

बाह्रे आओ मेरी श्याम सुन्दरी,
कृष्ण जी लग्नां जो आए।

वर को प्रभु कृष्ण की संज्ञा दी जाती है और कन्या को श्याम सुन्दरी की। लड़की को सर्व प्रथम जब वेदी में बाहर लाया जाता है, तो वह वर के दाहिने होगी और वर तुरन्त आदर

हेतु कन्या के आगमन पर खड़ा हो जाता है। पुरोहित लोग समयानुसार कार्यारम्भ के लिए हमारी प्राचीन संस्कृति के अनुसार चारों तरफ से इस बाणी से शुरू होने हैं :—

ॐ स्वस्तिनऽइन्द्रो वृद्ध श्रवः स्वस्तिनः भूषा विश्व वेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ पय पृथिव्यां पय औषधीषुं पयो दिव्यन्तरिक्षो पयोधाः। पय स्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥

अतः इस प्रकार के वैदिक मन्त्रों से कार्यारम्भ होता है और वेदीं तक। तत्पश्चात् लग्नों का कार्य लग्न इत्यादि भंवरे सभी सम्पूर्ण होते हैं। कन्या पक्ष का पुरोहित एक गड़वी में फूल अक्षत सहित पानी डाल कर पुकारना शुरू करता है। 'कन्यादान समावेदी, कन्यादान समावेदी' लगभग प्रत्येक पुरुष व नारी कन्यादान डालना उत्तम समझते हैं। सभी पुरोहित के लोटे में दस-दस पैसे या यथा सामर्थ्य डालते हैं। तत्पश्चात् वर को अन्दर ले जाते हैं जहां कन्या पक्ष वालों द्वारा 'कंणदेव' लिखा होता है। जाते ही सभी औरतें वर को उल्हाने में :—

देख-देख लाड़ेया म्हारे कंणदेवा,
देख-देख लाड़ेया म्हारे कंणदेवा।

फिर कन्या और वर के बीच 'दुधा भत्ती' खिलाई जाती है। उसमें नैंण परात में दही डालती है और एक चांदी का रुपया हाथ में लेकर परात में फैंकती है। उसको कन्या व वर दोनों उठाने की कोशिश करते हैं। जो उसे दोनों में से पहले उठा लेगा वह विजयी माना जाता है। औरतें तुरन्त लोक-गीत प्रारम्भ करती हैं :—

हार गया जी हार गया नटणी दा पुत हार गया।
जीत गई जी जीत गई सिंहणी दी बेटि जीत गई।

तात्पर्य कि वर को नटणी का लड़का सम्बोन्धित करतीं हैं और कन्या को सिंहणी की लड़की। यह एक प्राचीन परम्परा है कि औरतें नारी पक्ष को सदैव विजयी समझती हैं। कुछ भी हो कन्या पक्ष वालों की स्थिति दयनीय ही रहती है। तत्पश्चात् जब विदाई से पहले बारात को भोजन दिया जाता है तो कन्या पक्ष वाली औरतें ब पक्ष वालों के लिए कुछ हास्य रसिक गालियां गाती हैं, जिन्हें लोक भाषा में 'सिठणियां' कहते हैं। औरतों के दो समूह बन जाते हैं, ज्यूं ही आंगन में भोजन हेतु पंक्तियां लगती हैं त्यूं ही वे गाने आरम्भ कर देती हैं :—

ए जी फलांणयां, 'हां जी।'
लाड़े के बाप दादा का क्या नाम है,
'डोंडा जी डोडा''
भन्न साले दा गोडा साल्या खड़ा रह।

ए जी फलांणयां, 'हां जी।'
इस लाड़े दे भाई दा क्या नाम है,
''अक्क जी अक्क''
भन्न साले दा लक्क साल्या खड़ा रह।

छोल्यां मिसी दाल मुइए रिझदी कोरियां ठीकरीयां,
हाड़े करदी, सकदे करदी बकरे सुखदी चार मुइए,......
ऊतर मेरिये पुरवलिए।

इन हास्यपूर्ण लोक-गीतों से थोड़ा सा वातावरण हास्य के रंग में रंगकर प्रफुल्लमय बन जाता है। परन्तु इसके साथ-२ कन्या विदाई का समय समीप आता जाता है और समयानुकूल विदाई और दयनीय गाने चलते हैं। मां बाप की तरफ से संबोधित :—

मेरिए नीं तूं लंमिए खजूरी किनी दित्ती एडे दूर,
माते नीं दीती बापुए नीं दीती लेख लई गए एडे दूर मेरिए नीं ..।
भाईए नीं दीती भाभिए नीं दीती लेख लई गए एडे दूर ..मेरिए नीं ...।
चाचे नीं दीती चाचिए नीं दीती लेख लई गए एडे दूर ..मेरिए नीं ..।

इसमें 'लेख' जो प्राकृतिक है प्रबल माना है लड़की सबको निर्दोष बताती है वह किसी भी परिवार के सदस्य को किसी प्रकार का लांछन नहीं लगाती है परन्तु भोले भाव से 'होनी' व प्रकृति को ही लक्ष्य करती है। तात्पर्य कि ऐसा ही ईश्वर को स्वीकार था। जो हो रहा है वह सब ईश्वरीय प्रेरणा से ही है।

शनैः शनैः वातावरण विदाईपूर्ण और गम्भीर होता जाता है। वेदी में सारे दहेज व आवश्यक बस्तुओं को विस्तारपूर्वक सजाया जाता है। बीच में वर और कन्या को बिठा दिया जाता है। संकल्प हेतु संस्कृति के आधार पर सभी परिवार के निजी सदस्य उनकी भंवरे लेते हैं। बहुत ही दयनीय हृदय होता है। लड़की का रोना शुरू रहता है, क्योंकि अब उसे उस घर में नहीं रहना है उसे अब अपने माता-पिता से दूर, दूसरे ही वातावरण में जीना होगा, उसे अपने बचपन के सपने मां, बाप व भाई बहनों के साथबीता प्यार व लाड़मय वक्त याद आता है। यह फिर स्वाभावि कभी है कि अब आगे न जाने कैसे जीवन कटे। वह मां और बाप जिन्होंने बड़े लाड़ प्यार से अपनी बच्ची को पाला पोसा था आज वे उसे एक अनभिज्ञ पुरुष का सौंप रहे होते हैं, भला उनके आँसू कौन रोक सकता है। उस समय तो प्रकृति भी आंसू बहाती है, मनुष्य तो क्या है। औरतों के समूह गान :—

तेरयां मैहलां दे अन्दर वे बापू मेरियां गुडियाँ रहियां।
तेरियां गुडियां खिलावे तेरी भैंहण धीए घरे जा अपणे।

बहुत ही दयनीय वातावरण होता है, यहां तक की कई बार दूल्हे भी इस समय आंसू बहा देते हैं, क्योंकि कन्या की सहेलियां भाई बहिन, मां बाप व सामिप्य रखने वाले सभी रो पड़ते हैं। ये प्रसन्नता के आंसू समझो चाहे बच्ची के स्नेह के। सचमुच ही हमारी संस्कृति कितनी महान है कि प्रत्येक नारी व पुरुष गौरव के साथ कार्य को सम्पन्न करने में संलग्न रहता है। यह सभी प्राकृतिक बातें हैं कि वे सभी नर नारी जो शामिल होते हैं साक्षी होते हैं, सारा समाज इसका साक्षी होता है कि अमुक की कन्या अमुक लड़के को व्याही गई है। तात्पर्य यह है कि वैदिक मन्त्र से पूर्ण यह कार्य सम्पूर्ण होता है। भाई बहिन को उठाकर स्वयं डोली में बिठाता है, वर अपने सास-ससुर तथा अन्य सम्बन्धियों के आदर पूर्वक पांव छू कर प्रणाम करता है। कुड़म-कुड़म आपस में आलिंगन

करते हैं। कन्या के बाप के ये शब्द "देखना महाराज अगर बेटी कोई नासमझी भी करदे तो क्षमा करना अभी बच्ची ही है।" और आंखों से अश्रूधार बहा देता है। यह स्थिति सबके हृदयों को हिला देती है। अब लड़की को अपने ससुराल में ही रहना होता है वहीं उसका जीना मरना होता है। अगर वह संकट में है तब भी उसे वह झेलना पड़ता है, कितना त्याग है नारी का, विश्व में अगर देखा जाए तो शायद इतना त्याग किसी का भी नहीं है, नारी पुरुष की पूरक है और पुरुष नारी के लिए सहारा है। जीवन रूपी गाड़ी तभी ठीक चल सकती है अगर नारी गृहस्थ को सुखी बनाए अन्यथा बहुत से लोग परिवारों में बुरी तरह से असफल हो जाते हैं। अर्थात् उनका जीवन, जीवन नहीं कहलाता, वैसे व्यक्ति सृष्टि पर बोझ समझे जाते हैं।

यह ठीक है कि हमें प्राचीनता से चिपकना नहीं है परन्तु आदर अवश्य करना चाहिए। वेदों व पुराणों में भी नारी सर्वोच्चता का गुण गान मिलता है। देवताओं ने इसे शक्ति का रूप प्रकट किया है जैसे : "ॐ देव्यायययातमिदं जगदात्मशक्त्या निशेष देवगण शक्ति समूह मूर्त्या तमाम्बिकामखिल देव महाऋशि पूज्या भक्त्या न ता समविधातु शुभानि श।" (दुर्गा शप्तशति) अर्थात् है तो देव शक्ति लेकिन रूप नारी का है। अतिशयोक्ति न होगी अगर हम नारी को वात्सल्यमयी करूणा व दया की साक्षात मूर्ति मां, सफल गृहणी, बहिन व शक्ति की स्रोत कहें। आज का नारी समाज पुरुषों से किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं है। चाहे कोई भी राज्य है सभी भारतीयों को बराबर के अधिकार प्राप्त है। विशेष कर हिमाचल भारत का वह राज्य है जो प्राचीन संस्कृति व परम्पराओं का भण्डार है, यही कारण है कि इतने लघु समय में यह राज्य कई प्रान्तों से आगे बढ़ गया है। इसका श्रेय हमारे कुशल बुद्धि डा०यशवन्तसिंह जी प्रमार मुख्य मन्त्री को जाता है, क्योंकि उनके निर्देशों व प्रयत्नों से ही पुर्ण राज्य का अधिकारी बना है। मैं यह आशा करता हूं कि राज्य का प्रत्येक युवक, नागरिक, कम से कम नारी समस्याओं व उलझनों को विशेषकर दहेज आदि कुप्रथाओं को सुलझाने में अपना सहयोग देंगे। यही आज के समाज की पुकार है! प्रत्येक भारतीय का जीवन शुद्ध सात्विक, अधिक से अधिक कार्य कुशलता हो, निरोग हो, व शक्तिशाली बनें यही पाठ हमें हमारी पुरातन संस्कृति सिखाती है। हमें अपने कुशल नेताओं के पदचिन्हों पर चलना चाहिए तथा अपनी संस्कृति व परम्पराओं पर गौरवमय दृष्टि रखते हुए ही हम विश्व में अपना स्थान सर्वोच्च प्राप्त कर सकेंगे।

ग्राम व डा० चान्दपुर,
जिला बिलासपुर (हि०प्र०)

★●★

कांगड़ा की लोकोक्तियों का सांस्कृतिक अध्ययन

—योगेन्द्र सिंह 'तूर'

लोकोक्ति का सामान्य अर्थ है लोक में प्रचलित उक्ति। लोकोक्ति लोक साहित्य का विशिष्ट अंग है। जिसका सीधा सम्बन्ध लोक मानस से है। पगतिशील समाज में प्रायः कुछ ऐसी उक्तियां प्रचलित हो जाती हैं जो धीरे-धीरे अपना अस्तित्व पा लेती हैं जिनमें लोक जीवन की सच्ची अनुभूति तथा निरीक्षण समाविष्ट रहता है। इसीलिए लोकोक्ति को मानस जीवन की चिरसंचित अनुभव राशि तथा ज्ञान गरिमा का सार समुच्चय कहा गया है।[1] डॉ० शकुन्ला वर्मा का उस सम्बन्ध में कथन है कि लोकोक्तियां छोटी-छोटी उक्तियां हैं, छोटे-छोटे मार्मिक कथन जिनमें मानव के निरीक्षण, अनुशीलन व अनुभव का सार निहित होता है। सच्चाई और ईमानदारी इनकी आधार शिला है। सांसारिक व्यवहार पटुता की झलक इनमें देखी जा सकती है। साथ ही लोक दृष्टि कितनी सूक्ष्म दर्शिनी है, लोक बुद्धि कितनी गहरी है और लोक बाणी कितनी पैनी एवं सशक्त है, यह भी लोकोक्ति से प्रकट हो जाता है।[2] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा है—'लोकोक्तियां मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। वे मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से सदा फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती रहती है।'[3] डा० सरोजनी रोहतगी ने लोकोक्तियों को लोक-जीवन के गूढ़ विचारों का कोष कहा है।[4]

स्पष्ट है लोकोक्ति में लोक-जीवन का गहरा अनुभव तथा कटु सत्य निहित रहता है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध ग्रामीण समाज से है और ज्यादातर लोकोक्तियां का प्रयोग गांव के लोग ही करते हैं। लोकोक्तियों का इतिहास क्या है, यह कहना तो कठिन है किन्तु अनायास ही जिस बुद्धिमान व्यक्ति के मुख से लोकोक्ति फूट पड़ी होगी, उसका नाम तो मिट गया किन्तु वह उक्ति लोक में मान्यता प्राप्त करके सभ्यता का भार वहन करती हुई एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती रही। डा० कन्हैयालाल सहल का मत है—'कहावतें मानव स्वभाव और व्यवहार-कौशल के सिक्के के रूप में प्रचलित होती हैं और वर्तमान पीढ़ी को पूर्वजों के उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती है।'[5]

---

1. कहावत कोश—प्र०स० प्रस्तावना पृ० १, —डा० भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव'।
2. छत्तीसगढ़ी लोक-जीवन और लोक-साहित्य का अध्ययन —डा० शकुन्तला वर्मा, पृ० २४६।
3. राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन, —डा० कन्हैयालाल सहल, पृ० २० (डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन)।
4. अवधी का लोक-साहित्य, —डा० सरोजनी रोहतगी, पृ० ४३६।
5. राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन, —डा० कन्हैयालाल सहल, पृ० १।

वस्तुत: लोकोक्ति में जो अर्थ छिपा रहता है वह दीर्घ कालीन जीवनानुभव का परिणाम होता है जिसकी आवश्यकता अनपढ़ ग्रामीण जनता में व्यावहारिक ज्ञान के लिए ज्यादा होती है। लोकोक्तियों एक प्रकार से आप्त वाक्य हैं जो किसी बात को सत्यापित करने के लिए प्रमाण का कार्य करती हैं। लम्बी बात चीत के दौरान अनायास कोई लोकोक्ति आ जाये तो उसके सारगर्भित अभिप्राय से हम आश्वस्त हो जाते हैं और एक नई दिशा मिल जाने से मौन धारण कर लेते हैं। यही हमारे जीवन में लोकोक्ति का महत्व है जिससे हमारे व्यवहारिक ज्ञान में श्रीवृद्धि होती है।

लोकोक्तियों के माध्यम से किसी स्थान, जाति तथा प्रदेश की संस्कृति का अध्ययन बड़ी सरलता से किया जा सकता है। सांस्कृतिक दृष्टि से कांगड़ा प्रदेश का भारत में ही नहीं, वरन् विश्व भर में एक गौरवशाली स्थान है। कांगड़ा का इतिहास जितना पौराणिक है उतनी ही इस प्रदेश की कला और संस्कृति भी प्राचीन है। यहां हमारा उद्देश्य कांगड़ा में प्रचलित लोकोक्तियों के आधार पर सांस्कृतिक अध्ययन करना है। समग्रत: कांगड़ा की संस्कृति को जानने का यह एक पक्षीय दृष्टिकोण है किन्तु फिर भी लोकोक्तियों के द्वारा यहां की संस्कृति का स्पष्टत: अध्ययन कर सकते हैं। सुविधा के लिए कांगड़ा की लोकोक्तियों का सांस्कृतिक अध्ययन इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

पारिवारिक जीवन :

कांगड़ा प्रदेश में संयुक्त परिवार की प्रणाली विशेष रूप से प्रचलित रही है जिसका अब विघटन भी हो रहा है। संयुक्त परिवार में पारस्परिक सहयोग की भावना रहती है जिससे सामाजिक उन्नति में अधिक अवकाश रहता है। साथ ही संयुक्त रूप में रहने से पारिवारिक प्रतिष्ठा की श्रीवृद्धि होती है। इसीलिए 'सत्तां दी लाठी इक्की दा बोझ' लोकोक्ति में यही व्यंजना ध्वनित होती है। जिस पुरुष पर पारिवारिक व्यवस्था का दायित्व होता है, वह जीवन की आवश्यक वस्तुओं को जुटाता है। उत्तरदायित्व आ जाने पर वह ज्यादा गंभीर तथा विचारवान् रहता है। बाल्यवस्था का उल्लास समाप्त हो जाता है। इसीलिए यह लोकोक्ति प्रचलित हुई है—

राग रंग भुली गै, भुली गईयां छकड़ियां।
जोरू दे सनेह् ग्राए लुण, तेल लकड़ियां।

पारिवारिक व्यवस्था के आन्तरिक भाग का उत्तरदायित्व स्त्री पर निर्भर रहता है। वह घर की व्यवस्था चलाने के लिए हर संभव प्रयास करती है। एक अच्छी गृहस्थ स्त्री के लिए कांगड़ा में यह लोकोक्ति प्रचलित है—'जिन्नी घरे दे चलण चलाणे, तिन्नी सिर खोल बन्नण पाणे।' कतिपय स्त्रियां इसके विपरीत दुश्चरित्र भी होती हैं। अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए परपुरुष से प्रेम करने लग जाती हैं जिससे घरेलु दशा खराब हो जाती है। पति पत्नी के बीच झगड़े होने लगते हैं। इसीलिए चरित्रहीन पत्नी को उसका पति यह कह कर लताड़ देता है—'बालुए जो क्या रोंदी नक्के ते भी जाणा।' अर्थात् तुम्हारे दुश्चरित्र से समाज में इज्जत भी मिट्टी में मिल जाएगी। ऐसे परिवार में शान्ति नहीं रहती है। पति को हर कहीं पग-पग पर कष्टों का सामना करना पड़ता है—'चढणी घाटी तां खुन्नी दराहटी, घरें औणां तां रंडा ने घुलाटी।' इन्हीं बातों से संयुक्त परिवार टूटते हैं तथा समाज में उनकी प्रतिष्ठा नहीं होती है।

गृह व्यवस्था के लिए गुणवान पत्नी का होना आवश्यक है। अगर पति पत्नी दोनों निखट्टू हुए तो वह परिवार के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होता है। 'पर घर जांदी नार मरे, मर्द मरे मनखट्टू' इस तरह के स्त्री मर्द का मर जाना अत्यधिक श्रेयस्कर है। कांगड़ा में यदि प्रथम पत्नी का असमय में देहावसान हो जाये तो दूसरी स्त्री के साथ पुरुष विवाह कर सकता है। किन्तु यह जो स्त्री परिवार आती है, वह मृतक स्त्री के बच्चों के लिए 'सौकण मां' की तरह व्यवहार करती है। अपने प्रेम से पति पर अधिकार प्राप्त करके वह मनचाहा कर सकती है—'सोकनी दा भाण्डा भारी लगदा'। वृद्धावस्था में पहुंचने पर स्त्री पुरुष का अस्तित्व कम हो जाता है। उस समय न तो पुत्र बात पूछता है और न ही नूं। घृणा भाव को व्यंजित करने वाली यह उक्ति देखिए :—

मुंहें पेईयाँ चिमडियां, पिट्ठी पिया लक्व।
नुआं नी बोलदियां सौहरा, पुत्र नी बोलदा बव।

भारतीय समाज में सास हमेशा पुत्रवधु की उपेक्षा करती आयी है। यद्यपि घर के सारे उत्तरदायित्व नूं पर डाल दिये जाते हैं लेकिन उसे किसी चीज से स्पर्श नहीं करने दिया जाता है। ऐसी स्थिति में सास अपने पुत्र के भय से प्रत्यक्ष रूप से नूं को कुछ नहीं कह सकती है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वह अपनी पुत्री के माध्यम से व्यंग्य प्रहार करती है। जब कभी घर में कोई वस्तु लायी जाती है और वह किसी को पसन्द न आए तो उसे नूं को दे दिया जाता है। कांगड़ा में भी सास की इन बातों से 'नूँ' की दशा उपेक्षणीय तथा तिरस्कृत रही है :—

१. घर बार तां तेरा नूं हैं, पर दिक्खयां हत्थ मत लान्दी।
२. गलाया धीए तिज्जों, नूहें तू कन्न दे।
३. मुंहे नी भ्रोजेया लैह तू नूंएं।

हमेशा से मां को अपनी पुत्र वधु इतनी प्यारी नहीं रही है जितनी बेटी। ऐसी लड़की अपनी ससुराल कभी भी बास नहीं कर सकती जिसका पति तथा सास ससुर से व्यवहार संतोषजनक न हो। पति की उपेक्षा कर, वह बुरा भला कहने लगती हैं। अगर इस स्थिति में वह लड़कर मायके चली आए और इसकी मां उसे गले से लगा ले तो वह कभी भी ससुराल में नहीं रह सकती। इसलिए कांगड़ा समाज में लड़कियों को माता पिता व्यावहारिक तथा नैतिक शिक्षा देने में प्रयत्नशील रहते हैं। उनके चरित्र पर पूर्णतः निरीक्षण रखा रहता है। अगर को लड़की अपने माता पिता के घर गलत व्यवहार करे तो उसे यह कह कर लताड़ दी जाती है :—

१. धीए बरती हुंगा तां बरतिआं, जबानी ते मत हारबी।
२. धी आई नहस्सी, मां पई हस्सी सैंह्, धी कल्हु बस्सी ?

कांगड़ा समाज में परिवार नियोजन को विशेष महत्व दिया जाता है। क्योंकि परिवार छोटा हो तो वह सुखी रहता है। जितने बच्चे अधिक होंगे, उनका जीवन उतना ही अस्तव्यस्त तथा उछृंखल होता है। अधिक बच्चों की मां का जीवन दुःख पूर्ण होता है। कोई बच्चा कहीं रो रहा है तो कोई कहीं डुसक रहा है :—

१. गई थी कुत्तकें, इक रोए दुआ डुसके।

खेती-बाड़ी तथा पशु पालन :

कांगड़ा के लोगों का प्रमुख व्यवसाय खेती-बाड़ी तथा पशु पालन उनके जीवन निर्वाह का प्राण है। खेती बाड़ी के सम्बन्ध में यहां के किसान को जो अनुभव हुए हैं, वे उनकी लोकोक्तियों में सुरक्षित हैं। इसलिए कृषि सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किए बिना इन लोकोक्तियों से सामान्यतः कई तथ्यों की जानकारी मिल जाती है। कांगड़ा प्रदेश में जंगली जानवरों तथा पशु पक्षियों से खेती की सुरक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा खेती की देख भाल किए बिना वह नष्ट हो जाती है खेत के चारों तरफ बाड़ देने की भी व्यवस्था की जाती है। बाड़ अच्छी तरह न लगाया जाए तो पशु उसके अन्दर आसानी से प्रवेश कर खेती को उजाड़ देते हैं।

१. खेती खसम सेती, जिसा खेतिया खसम नी जाए, सैंह खेती खसम जो खाए।
२. सैंह बाड़ क्या, जेहड़ा खेतिया जो खाए।

किसान को समयानुसार खेती बीजनी चाहिए अगर वह बिलम्ब कर दे, तो खेती अच्छी न लगने में संदेह रहता है। कांगड़ा के किसान का अनुभव है कि अगर ज्येष्ठ मास तथा कुछ आषाड़ के आरम्भिक दिनों में ग्रीष्म ऋतु भरपूर हो जाए तो बरसात अच्छी होती है जो मकई की फसल के लिए फायदेमंद रहती है। गेहूं की बीजाई कार्तिक मास में होने लगती है। अगर इस मास वर्षा न हो तो बेहतर रहता है। क्योंकि इससे खेती लगाने में देर हो जाती है। इस मास में वर्षा धान की खेती के लिए अत्यन्त हानिकारक रहती है :—

१. राहड़े दा भुलया बोटी, कणे हाड़े दा भुलया किसान कदीं तारों नी श्रौंदा।
२. तपे तीर, होए श्रमीर।
३. काती किन्यां, इक रोटी दो जनयां।
४. काती किनया निहा गिनया।

खेती बाड़ी के लिए प्रत्येक किसान के पास बैलों की जोड़ी होना अनिवार्य है। जिसके पास बैल नहीं होते उसके खेत या तो सूखे ही रहते हैं अथवा पीछे से फसल बीजी जाती है जो समयानुसार अच्छी नहीं लगती है। बिना बैलों के किसान को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है :—

रन्नां मारे सैंह मरे बिन बलदे किसान।
चढ़दियाँ घाटियां सैंह मरे, जंघा जिस दिया नी त्राण।

कांगड़ा के लोगों का खेती बाड़ी के साथ पशु-पालन प्रमुख पेशा है। इससे कृषि में भी बड़ी सहायता मिलती है। यहां गाय भैंस के साथ भेड़ बकरियों का विशेष रूप से पालन होता है। पहाड़ी इलाका होने के कारण यहां हरा तथा सूखा घास पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है, इस लिए किसान को पशु पालन में कोई कठिनाई नहीं होती है। पालतू जानवरों में कुत्ता तथा बिल्ली विशेष रूप से पाये जाते हैं। कुत्ता तो किसान का विशेष सहायक रहता है। वह खेती-

बाड़ी को जंगली जानवरों से नष्ट होने से बचाता है। किन्तु शहरी सभ्यता की तरह किसान कुत्ते को इतना प्यार भी नहीं करता कि उसे रसोई तक ले आया जाये—

'कुत्ता नुहाई डुहाई दित्ता, तां रसोई थोड़ी लाई लैणा।'

जीविकोपार्जन के साधन तथा व्यापार आदि :

कांगड़ा के लोग अत्याधिक परिश्रमी तथा साहसी होते हैं। पहाड़ी इलाका होने के कारण जीवन-यापन के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। इस लिए यहां के लोग अपने शरीर से इतना मोह नहीं करते जितना काम से। परिवार में कुछ सदस्य आलसी होते हैं जिन्हें भी काम के लिए डांटा जाता है :—

१. कम प्यारा चम नी।
२. जंगा पीड़ बांह पीड़, भत्तें दे थालुए रांह घरीड़।

आर्थिक सम्पन्नता की दृष्टि से यहां के लोग बहुत पिछड़े हुए हैं। यद्यपि यहां के समाज में कार्य बंटवारा आर्यों की पद्धति पर ही है किन्तु फिर भी किसान वर्ग अत्यन्त निर्धनता की दृष्टि में है। किसान पर ही अन्य निम्न जातियां ज्यादातर निर्भर रहती हैं। राजपूतों में खेती-बाड़ी अधिक होती है जबकि निम्न तथा पिछड़ी जातियां अपने पैतृक काम को ही ज्यादा महत्व देती हैं। कांगड़ा की लोकोक्तियों में डूमणा, नाई, सुनार आदि जातियों का उल्लेख हुआ है :—

१. नाईया बाल केडे केडे मुंहे गेडे।
२. डूमणे दा क्या चूमणा, चुकया दराहटू जाई रिहा पठियार।
३. सन्यारे दा गुग्राह मन्यार।

कार्य का बंटवारा होने पर भी यहां के लोगों की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है। जिस घर का कोई भी व्यक्ति फौज में न हो या किसी शहर में न कमाता हो उसके घर की स्थिति तो और भी नाजुक होती है। क्योंकि खेती का भरोसा नहीं होता है, वह प्रकृति पर निर्भर करता है। कभी-कभी ज्यादा वर्षा अथवा गर्मी फसल के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। बाढ़ें आ जाने से खेत बह जाते हैं और मेहनत व्यर्थ हो जाती है। यहां के लोग यह बराबर सोचते हैं कि अब अच्छे दिन आयें, अब आयें लेकिन वे कभी भी नहीं आते हैं :—

१. न खाणें खाण न मंजें बाण।
२. सरका कौडिया दा, पुआडा सौए दा।
३. अज नपूती कल नपूसी फूले केसो तां नपूती।

पहाड़ी लोग ईमानदार होते हैं। किसी की वस्तु या धन चुराना वे पाप समझते हैं। अगर अनुचित रूप से धन की प्राप्ति हो तो उसे वे बेइमानी समझते हैं जिससे समाज में प्रतिष्ठा जाती रहती है। यहां के लोग अत्यधिक निर्धन होने के कारण उम्र भर साहुकारों के पंजे में जकड़े रहते हैं जिससे साहुकारों के हाथ लम्बे होते रहते हैं :—

१. औंदी तां हथ काले, जान्दी तां मुंह काले ।

२. घरे नीं गोट्टू, नां धनपति ।

३. नामीं साह खट्टी खाए, नामीं चोर फाहें जाए ।

कांगड़ा में व्यापार छोटे-छोटे स्तरों पर ही किया जाता है। पशु, अनाज तथा घास, लकड़ी आदि का ही व्यापार एक गांव से दूसरे गांव तक सीमित रहता है। कुछ घूमने फिरने वाले घरेलू चीजें घर-घर बुजका डाल कर बेचते हैं।

खानपान तथा वेशभूषा :

कांगड़ा के लोगों का खानपान अत्यन्त सादा है। ज्यादातर दूध, दही आदि पदार्थों का प्रयोग करते हैं। यहां के लोग घी का भी प्रयोग करते हैं। वस्तुतः घी का प्रयोग उन्हीं घरों में किया जाता है जिनके पास गाय भैंस आदि हों। गरीब जरूरतमन्द लोग घी को बेच देते हैं। त्यौहार अथवा विवाहादि के अवसरों पर 'बबरू' बनाने का प्रायः रिवाज है। यहां के लोग गरीब होने के कारण पकवानों आदि की इच्छा मात्र ही कर सकते हैं। कांगड़ा में 'सत्तु' का गर्मियों में प्रयोग होता है। गेहूं की फसल तैयार हो जाने पर प्रत्येक घर में सत्तु बनाये जाते हैं। धान आदि की खेती भी बहुत होती है। पालमपुर, खास कांगड़ा आदि भागों में एक समय चावल खाये जाने का रिवाज है।

१. खाणियां भी दो दों, खाणियाँ भी चोपड़ियां ।

२. लबड़ूआं दा नी लगदा बबरूआँ दा लगदा ।

३. गड्डी नी जौं, कजए जो गौं ।

४. भूताँ जो क्या सत्तु ।

लोकोक्तियों में वेशभूषा का कोई वर्णन आदि हमें नहीं मिला। हो सकता है कोई लोकोक्ति नजर में नहीं। कांगड़ा में सोने के वस्त्रों में खिन्दों का विशेष महत्व है। यहां के लोग रात को सोने के लिए 'खिन्दां' का ही प्रयोग करते हैं। घूंघट का रिवाज भी एक लोकोक्ति में आया है :—

१. जुआं पिच्छें खिन्दां नी फूकणियां ।

२. नचनां तां भूण्ड क्या ?

संस्कार :

भारतीय हिन्दू समाज में अनेक तरह के संस्कार तथा रीति-रिवाजों का पालन किया जाता है। कांगड़ा में जन्म, मुंडन, विवाह तथा मृत्यु ये चार संस्कार अत्यधिक रूप में प्रसिद्ध हैं। लोकोक्तियों में विवाह और मृत्यु दो ही संस्कारों का उल्लेख हमें मिल पाया है। जब कोई लड़का या लड़की विवाह योग्य हो जाए तो उन्हें वैवाहिक सूत्र में बान्ध देने की शीघ्रता की जाती है। कांगड़ा में अनमेल विवाह की घटनाएं प्रायः कम ही होती हैं। विवाह के दिन दहेज वगैरह ले जाने वाले तथा कहार आदि अपना-अपना लाग भी लेते हैं जिसका एक लोकोक्ति में संकेत है :—

१. भट्ट मंगणी ते पट्ट ब्याह ।

२. ऊंटे दे गलें घँटा ।

३. लागियां लाग लैणें, रंड मरदी मरे ।

कांगड़ा में मृत्यु संस्कार भी किया जाता है। मृतक शरीर पर कफ़न डालना अनिवार्य है। जिस घर का आदमी चल बसे, वहां सभी लोग भूमि पर सोते हैं :—

१. पल्ले नी कफन मरने जो अड़िया।
२. भुईयां बछाण।

आस्तिकता :

कांगड़ा के लोगों का जीवन आस्थावादी है। यहां पर देवताओं की पग-पग पर जिस रीति से पूजा की जाती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। चानो, गूगा, पीर, जख, सिद्ध, नाग आदि अनेक तरह के देवताओं की यहां स्थापनाएं मिलती हैं। पीर की स्थापना मुसलमानी प्रभाव है। प्रत्येक फसल के तैयार होने पर अथवा गाय भैंस के सूने पर विशेष रूप से देवताओं को चढ़ावा दिया जाता है।

कांगड़ा के लोग सत्य मार्ग पर चलना अपना नैतिक धर्म मानते हैं क्योंकि हमेशा सत्य की ही विजय होती है। यहां के लोगों में राम के प्रति भी आस्था है। भाग्य तथा पुनर्जन्म में भी विश्वास किया जाता है। निर्बल आदमी का अगर कोई भी सहायक न हो तो वह अपना ईश्वर को ही सहायक मानता है :—

१. सच्चे माणुए जो कैहदा डर।
२. हड्डों गोड्डों बैह् गई तां राम जपन ढैह् गई।
३. हाए बो किसमता देआ बलिया, रिद्धि खीर तां होई गिया दलिया।
४. जली गै अनलिखियो, खाद्दयो भरी-भरी नी मुकदे।
५. सीसां बालियां सीस गुदाग्दियां, गन्जी दा भी अल्ला बेली।

तीज त्यौहार भी आस्तिकता के ही अन्तर्गत आते हैं। कांगड़ा में लोहड़ी, पंजी, दिवाली आदि त्यौहार बड़े जोर शोर से मनाए जाते हैं। जगह-जगह पर मेले आयोजित होते हैं। हर देवता की स्थापना पर एकाधिक दिन तक मेले लगे रहते हैं :—

ठाहरी ठाहरी मेले।

परम्परावादिता :

कांगड़ावासी अधिकतर परम्परावादी हैं। संस्कार पूजा आदि में परम्परा का पुर्णत: पालन किया जाता है। इसी तरह यहां के लोगों में पैतृक कार्य भी परम्परागत रूप में ही चलते हैं। ससुराल में जाते समय नवविवाहिता रोती हैं यह भी परम्परा बन चुकी है :—

१. गोह गई घसीट लग्गी।
२. घाहिए दे पुत्रे घा खोदणा।
३. रोई भी गुआई पर सोरियां ने भी नीं गई।

नैतिकता :

मनुष्य को व्यवहारिक बनने के लिए शिष्टाचार तथा नैतिकता का पालन करना परमावश्यक है। नीतिपरक लोकोक्तियों में उपदेश तथा सद्भावना की व्यंजना होती है। नयी पीढ़ी

अपने बुजुर्गों का अनादर करती है क्योंकि बुजुर्गों की बातों में आमले जैसा स्वाद आता है। व्यवहारिक रूप में समाज में दूसरों के समीप आना पड़ता है। उनके साथ व्यवहार किस तरह करना चाहिए, यह बहुत सोच समझ कर किया जाता है। किसी के इतना नजदीक नहीं जाना चाहिए कि वह उपेक्षा करे और इतनी दूर भी नहीं जाना चाहिए कि वह त्याग दे :—

१. सियाणयां दा गलाया कनें भ्राम्बलें दा खादेया पिच्छे ते सुम्राद भ्रौंदा।

२. देम्रा मिट्ठा भी मत बणां जें कोई निगली जाए।
देम्रा कौड़ा भी मत बणां जे कोई थूकी दे॥

शिष्टाचार के पालन में शालीन बनना पड़ता है किन्तु अत्यधिक शालीनता भी दुःखप्रद होती है। अगर कोई थोड़ा सा सहारा दे तो उस पर हावी ही नहीं हो जाना चाहिए :—

१. लिहाजे दी मां भिख मंगदी।

२. हन्डुए दा मुंह खुल्ला होए, ताँ कुत्ते जो तां शरम चाईदी।

नैतिक शिष्टाचार के पालन के साथ-साथ व्यक्ति को मधुर और समयानुसार स्वाभिमानी तथा विनम्र भी होना चाहिए। क्योंकि अशिष्ट व्यवहार उम्र भर के लिए याद रहता है :—

खरा देहा खादया कने बुरा बेहा गलाया उमरां जो याद रैहन्दा।

आचार विचार :

आचार विचार से तात्पर्य मनुष्य के चरित्र से है। कोई व्यक्ति किस तरह व्यवहार करता है, उसका सोचना समझना किस तरह का है, इससे उसके चरित्र का परिचय मिलता है। समाज में कुछ व्यक्ति इस प्रकार के होते हैं जो पहले तो निस्वार्थ सेवा करते हैं, तत्पश्चात् वे उसके लिए खतरनाक हो जाते हैं। इस प्रकार के चरित्र से बचना चाहिए। कुछ लोग अपने ही आदमियों की घर-घर में झूठी सच्ची चर्चा करते हैं जिससे वे स्वयं तो खरे हो जाते हैं लेकिन दूसरों को लड़ा देते हैं। मध्यस्थ होकर वे तमाशे देखते हैं। कोई चीज प्राप्त हो जाए, तो उसे सर्वस्व मान कर खाली प्रदर्शन नहीं करना चाहिए :—

१. मूड़ें बही करी मुच्छां पुटाणियां।

२. जिन्हा बैहणां बगानिया तापा, तिन्हां लोकां बणानियां भाखां।

३. चूहे जो मिल्ली हल्दिया दी गट्ठी, पंसारी बणी बैई गिया।

ऐसे लोग दूसरों का जीना हराम कर देते हैं। वे छोटी बात का बतंगड़ बना देने में चतुर होते हैं। दूसरों को कठिनाई में देख कर खुशियां मनाते हैं :—

१. भ्रपणे घरें मैंह नी सुजदी, बुए दे घरें जूं भी सुजी जांदी।

२. घरे फूक्की तमाशा दिखणा।

शिक्षा :

किसी भी समाज का शिक्षित होना बहुत ही आवश्यक है। दूसरा शिक्षा का व्यवहारिक होना भी निहायत जरूरी है। इसीलिए गांव के अनपढ़ लोग आज के पढ़े लिखे लोगों से ज्यादा

जीवनानुभव में परिपक्व तथा व्यवहारिक ज्ञान में निपुण माने जाते हैं। गांव के अनपढ़ पढ़े लिखे लोगों पर व्यंग्य भी करते हैं :—

१. पढ़्या तां छोरू भत्तेरा, पर गिणने नीं औन्दे तेरहा।
२. अक्खर नीं औन्दा पाणा, नां विद्यासागर।
३. पढ़यां ते कड़ऐ खरे।

व्यंग्योक्तियां :

कांगड़ा में ऐसी लोकोक्तियां भी प्रचलित हैं जिनमें कहीं हास परिहास है तो कहीं व्यंग्य बाणों की वर्षा। समाज में कुछेक लोग ऐसे होते हैं जो कल्पनाशील ज्यादा होते हैं। उन्हें दिन में ही तारे नजर आते हैं। एक गन्दा आदमी स्वच्छ तथा सुन्दर स्त्री की कामना कैसे कर सकता है। कुछेक व्यक्ति दूसरों का औपचारिक रूप से ही काम करते हैं जबकि व्यक्तिगत रूचि नहीं होती है। ऐसे ही लोग दिखावा करने में भी सिद्धहस्त होते हैं :—

१. चलया सीह्य बोलदा बिहाषी मीम।
२. तुसां दा पीतया कुणी छानणा, सेर बूरा, इक सेर आटा।
३. कल ढोलकी मढ़वाई अज तबलची वणी बैठा।

प्रकृति :

कांगड़ा का प्राकृतिक सौन्दर्य अनूठा है। यह प्रदेश पर्वतीय है। लोकोक्तियों में यहां की वनस्पतियों तथा पेड़ पौधों का उल्लेख कम ही मिलता है। आम तथा राडा का नाम आया है। गर्मियों तथा बरसात से सम्बन्धित भी लोकोक्तियां मिल जाती हैं।

१. जोरे वालेयां दा पत्थर कुआलिया।
२. आए दिन कराडे, ऋपने अम्ब तां पौंदे राडे।

वैशाख तथा कार्तिक मास में ऋतु परिवर्तन का भी लोकोक्तियों में संकेत मिलता है।

संगीत :

संगीत संस्कृति का विशेष अंग रहा है। कांगड़ा के लोग बांसुरी के बहुत प्रेमी हैं। बच्चे से लेकर बूढ़े तक बांसुरी बजाया करते हैं। डोम जाति की संगीत विद्या का एक लोकोक्ति में उल्लेख आया है :—

१. मुरलिया दा नी दिक्खया मुंह, नां मुरलीधर।
२. रागों भुली डूमणी, गाए आल बताल।

'पराई जाति में ढोल प्रियता पाई जाती है। 'ढोल' शब्द इस लोकोक्ति में आया है :—

गले पिया ढोल बजाना पौंदा।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन में कांगड़ा की लोकोक्तियों का संक्षिप्त अध्ययन करने का प्रयास किया है। लोकोक्तियां लोक-साहित्य का अंश मात्र होती हैं जिनसे किसी समाज की संस्कृति का अनुशीलन

समग्रतः नहीं किया जा सकता है। इस तरह के एकांगी अध्ययन में बहुत से सांस्कृतिक पक्ष छूट जाना मुमकिन हैं। फिर भी लोकोक्तियों में संस्कृति का बहुत बड़ा भाग अन्तर्निहित रहता है जिस का विशेष विश्लेषण आधुनिक सन्दर्भ में आवश्यक है। कांगड़ा की संस्कृति आरम्भ से ही समृद्ध तथा उच्च रही है। संयुक्त परिवार की प्रणाली कांगड़ा में अब भी प्रचलित है लेकिन अब वह टूट रहो है। कांगड़ा की लोकोक्तियों में पारिवारिक जीवन, खेती-बाड़ी, खान-पान, वेश-भूषा, आस्तिकता, नैतिकता, आचार विचार, व्यंग्योक्तियां, प्रवृति तथा संगीत आदि का वर्णन स्पष्टतः आया है। पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में अध्ययन करते हुए सामाजिक बुराइयों पर कटु व्यंग्य किये गए हैं। बुराइयों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करके उनका सुधार करने में लोकोक्तियां सहायक हैं। आधुनिक जीवन में अत्यधिक बौद्धिक विकास के उपरान्त भी लोकोक्तियों का महत्व विशेष नहीं हुआ है। व्यावहारिक शिक्षा तथा ज्ञानार्जन के लिए लोकोक्तियों की सदैव सहायता ली जाती रहेगी।

मेहर काटेज,
लोअर कैथू,
शिमला – १७१ ००३।

कृषक कलाकार बी० आर० भारद्वाज

–किशोरी लाल वैद्य

हिमाचल प्रदेश के जिला सोलन में स्थित एक ख्याति प्राप्त सैरगाह—चैल। वहीं लौटती बस का इन्तजार कर रहा हूं। और तभी एक युवा ने मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए 'बेहद' नम्रता और आत्म-संकोच से 'निवेदन' किया कि यदि मेरे पास समय हो तो मैं उनकी कुछ कलाकृतियां देख लूं। किसी भी कला का परिचय पाना मुझे भला लगता है। बस स्टैण्ड को मैं इस लिए नहीं छोड़ना चाहता था कि उस स्थिति में मुझ से बस छूट सकती थी और फिर निरुद्देश्य मुझे वहां एक दिन और ठहरना पड़ता जो मुझे इस लिए भी सम्भव नहीं दिख रहा था क्योंकि पिछले दिन की 'कवरेज' यथा शीघ्र सोलन पहुंच कर क्लियर करनी थी। अतः बस स्टैण्ड से बन्धे रहने पर भी मैं बढ़ी हुई दाढ़ी वाले युवा साथी के साथ-साथ हो लिया जिसका कहना था कि पास ही में एक दुकान पर उसकी जुटाई हुई कलाकृतियां प्रदर्शित हैं।

दुकान पर पहुंच कर उन कलाकृतियों के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट करने में मुझे देर नहीं लगी। विभिन्न प्रकार के पेड़ों जैसे बान, चीड़, बिहुल, रसौत, तुंग आदि की ये जड़ें, टहनियां, लट्ठे और ठूंठ मूर्त्तता और अमुर्त्तता के बीच अनेक आकार-प्रकारों में रूपायित हुए हैं जो निश्चित रूप से 'कला' की संज्ञा से अभिहित हो सकते हैं। कला की ही भाषा में इन्हें 'ड्रिफ्ट वुड' कहा जा सकता है लेकिन हिन्दी में इसका पर्याय 'प्रवाहित काष्ठ' अधिक उपयुक्त नहीं लगता।

भारद्वाज जी के संकलन में काष्ठ के ऐसे आकार हैं जिन्हें किसी जल-प्रवाह अथवा ऋतु-प्रभाव ने बड़े मौलिक रूप से संवार डाला है। इन्हें देखना अच्छा लगता है, आधुनिक रुचि-शुचि में सज्जा अथवा अलंकरण के रूप में इनका निश्चित स्थान है। मैं काष्ठ के इन आकार व आकृतियों को देख कर चौंका नहीं हूं पर इनकी खोज और संकलन के पीछे जिस व्यक्ति का हाथ रहा है, उसके कला-मानस के प्रति एक दम आश्वस्त हूं।

बी० आर० भारद्वाज, जन्म २६ जनवरी १९४६, जन्म-स्थान गांव काथला (चैल से तीन किलोमीटर की दूरी पर)। पिता ठाकुर कांशीराम के एक मात्र पुत्र, दूसरी सन्तान पुत्री। ७०-७५ बीघा जमीन के मालिक हैं और इस जमीन पर पलम, सेब, अखरोट, बादाम, आड़ू के लगभग १२०० पौधे लहलहा रहे हैं जिनमें से २०० पौधे लगभग २० वर्ष पुराने हैं। कृषि और बागवानी ही भारद्वाज का मुख्य व्यवसाय है और उनके भीतर का कलाकार भी उन्हें अपने परम्परागत व्यवसाय से अलग नहीं कर पाया है। अलबत्ता उनकी कला वास्तव में उनके मूल व्यवसाय का ही एक उपफल है।

यों भारद्वाज़ को युवा कहना गलत नहीं क्योंकि ३१ वर्ष उनकी उम्र है पर यह जान कर कि वे चार बच्चों के पिता हैं, मैं किंचित चौंका हूं। किसी आर्थिक चिन्ता से वे मुक्त हैं, ऐसा

एहसास वे बातचीत के दौरान स्वयं भी देते हैं और जहां उन्ये अपने संकलन से एक रागात्मक सम्बन्ध का एहसास है, वहां वे अपने आपको विशुद्ध कृषक कहते हुए अपने कृषि कार्य के प्रति गौरव भी महसूस करते हैं। हां, यदि उन्हें कलाकार कहें तो उन्हें कुछ संकोच होने लगता है और वे अपनी कला पर आध्यात्मिक रूप से सोचने और बतियाने लगते हैं। उनके संकलन की हर कृति एक कलात्मकता का सहज ही परिचय देती है और प्रेक्षक के सहज सौन्दर्य-बोध को अपील करती है लेकिन उनसे बातचीत करें तो वे जीवन और मौत के गम्भीर प्रश्नों के सन्दर्भ में उन पर प्रकाश डालने लगते हैं। मैं उनसे पूछता हूं कि क्या उन्होंने अपनी कलाकृतियों को कोई नाम या शीर्षक दे रखे हैं। वे उन कृतियों की व्याख्या करते हुए नाम गिनाते हैं—फरिश्ता, सत्यं शिवं सुन्दरम्, क्रूसारोपण, विचित्र सृष्टि, यह है जीवन, ममता, तमन्ना आदि आदि। इन कृतियों की कलात्मकता से आश्वस्त होते हुए भी मुझे लगता है कि भारद्वाज इन कृतियों में अपने मानस के अनुकूल कोई न कोई अर्थवत्ता ढूंढ लेते हैं जिसे किसी हद तक प्रेक्षक को भी स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं। उदाहरण के रतौ पर एक लकड़ी के ठूंठ में भेड़िये की आकृति का आभास होता है। इसमें भारद्वाज जी एक ऐसी ख्वाहिश की अभिव्यक्ति देखते हैं जो कभी पूरी नहीं होती। ऐसा ही एक अमूर्त्त रूप फरिश्ते का है जिसे वह तृप्त जीवन का बोधक मानते हैं। एक आकृति प्रेक्षक को एक पक्षी-परिवार का आभास देती है जिसे कलाकार 'ममता' की समुचित संज्ञा देता है। इन सभी आकृतियों को लगभग उनके मूल रूप में सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है अर्थात् हर आकृति बिना जोड़ के है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इन आकृतियों को औजारों का स्पर्श ही न मिला हो। लकड़ी के इन आड़े-तिरछे, टेढ़े-मेढ़े, मुड़े-तुड़े टुकड़ों को उनकी शाखाओं, उप-शाखाओं सहित ऐसे संवारा गया है कि उनका मौलिक रूप प्रस्फूटित हो और एक सार्थक कृति के रूप में उनका प्रेक्षक से तादात्म्य बने।

एक कृति में भारद्वाज को शेख फरीद की निम्न पंक्तियों की अनुगूंज सुनाई देती है : —

कागा करंग डडोलिया सगला खाया मांस।
यह दो नैना न छूंयो पिया देखन की आस॥

एक अन्य कृति में एक बन्दर की छोटी सी आकृति देखी जा सकती है। तिपाये के रूप में बन्दर धरातल से पर्याप्त ऊंचाई पर बैठा है लेकिन पूंछ एक छल्ला बनाती हुई बहुत ऊंची उठी है। कलाकार इसमें 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' के दर्शन करता है।

एक अमूर्त्त काष्ठ में उन्हें फरिश्ते के दर्शन होते हैं और 'फरिश्ता' उनकी समझ में वह है जो दूसरों के लिए जीता है। लगता है जैसे ईसा मुक्ति का संदेश लेकर आए हों।

एक अन्य काष्ठ-शिल्प में सज्जा और अलंकरण की दृष्टि से बड़ी सुन्दर कृति है जिसमें दो-तीन मुखाकृतियों में एक तो स्पष्टतया सिंह का आभास देती है लेकिन उसके ऊपर की विकृत आकृति में गाय की मुखाकृति का सा आभास मिलता है और इसके ऊपर सांप जैसे कोई छत्रछाया बनाए हुए हों। कुल मिलाकर किन्हीं विकृत आकृतियों की मिली-जुली अभिव्यक्ति के रूप में यह काष्ठ-शिल्प आकाश में उड़ान भरता हुआ मालूम देता है। कलाकार की दृष्टि में यह 'जीवन का जंजाल' के रूप में अभिहित हुआ है। विचित्रता को रूपायित करती दो टांगों पर खड़ी एक अन्य अमूर्त्त

आकृति है जो अभिनय की मुद्रा में दोनों हाथ फैलाये है। शरीर से व्युत्पत्त कुछ अन्य असामान्य अंग आकृति की अमूर्त्तता की और अधिक संवेदनात्मक गहराई देते हैं।

अपने में ही सिमटी, अपने अंग-प्रत्यंगों के अप्राकृतिक फैलाव में भारद्वाज का कला-मानस 'सदा बहार प्रकृति' के दर्शन करता है जिसे प्रेक्षक को कलाकार की दृष्टि से समझने में किंचित कठिनाई हो सकती है।

एक अन्य काष्ठ-शिल्प सज्जा की दृष्टि से अमूर्त्तता के बोधक के रूप में अपील करता है। कलाकार इसे 'हर्षातिरेक' शीर्षक देते हैं। कहा जा सकता है कि इन कलाकृतियों को आप कलाकार की दृष्टि से न देखकर यदि अपनी सौन्दर्यानुभूति में स्थान दें तो तब भी आप कलाकार और उनके कला-मानस के साथ न्याय कर सकते हैं।

दो टांगों से युक्त एक अन्य बड़ी विचित्र कृति है जिसमें आपको आपादमस्तक एक तलख ऐंठन का एहसास हो सकता है। कलाकार ने इसे 'इतना भी क्या' शीर्षक से अभिहित किया है जिसे प्रेक्षक 'ऐंठन' को मूर्त्तायन करने वाली एक सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में देख सकता है।

बातचीत के दौरान लगा कि वे इन सभी कृतियों को अधूरी समझते हैं। उनकी यह बात सही है क्योंकि अमूर्त्तता में किसी वस्तुता को सम्पूर्ण नहीं देखा जा सकता। उनके अनुसार उनके इस संकलन, जिसमें लगभग १६० कलाकृतियां हैं, की शुरुआत लगभग ७ वर्ष पूर्व हुई जब वह अपनी १५ बीघा ज़मीन को खेती योग्य बनाने के लिए झाड़ियां और कांटे साफ कर रहे थे। उन्हें ज़मीन पर से कुछ ऐसे ठूंठ व जड़ें मिलीं जिनमें उन्हें कुछ अर्थवत्ता नजर आयी। ऐसे ही ठूंठों व लकड़ी के अनगढ़ टुकड़ों में वे जीवन की व्याख्या ढूंढने लगे और उनकी 'कलाकृतियों' का संकलन समृद्ध होता गया।

भारद्वाज ने चण्डीगढ़ से प्री० इंजीनियरिंग की थी लेकिन आगे अध्ययन के प्रति उनमें उत्साह नहीं था। नौकरी वह करना नहीं चाहते थे, कृषि से अलग हो नहीं सकते थे। कुछ पारिवारिक आग्रह थे अन्ततः उनके भीतर के कलाकार ने अपने आस-पास से ही वह कुछ समेटा जो कला की दृष्टि से कदापि उपेक्षणीय नहीं है।

चैल एक खूबसूरत सैरगाह है जहां सैलानी और पर्यटक पर्याप्त संख्या में आकृष्ट होते हैं। भारद्वाज जी का कहना है कि लोग इन वस्तुओं को खरीदना चाहते हैं लेकिन उन्हें बेचने की उनकी कोई इच्छा नहीं होती, बेशक उनके लिए उन्हें आकर्षक दाम ही क्यों न मिल रहे हों। पैंतालीस रुपये मासिक पर उन्होंने जो दुकान ले रखी है, वहां उन्हें समुचित 'डिसप्ले' नहीं मिला है। भारद्वाज चाहते हैं कि उन्हें चैल में कोई ठीक सी जगह मिल जाए जहां प्रेक्षकों के लिए इन कला-वस्तुओं को सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किया जा सके।

जिला लोक सम्पर्क अधिकारी,
सोलन (हि०प्र०)

जम्मू की पर्वतीय जातियों के उपनाम

डॉ० प्रियतम कृष्ण

जम्मू के पूर्वोत्तरीय पर्वतीय क्षेत्र में बसे लोगों की जातियों के नामों का अध्ययन भी बड़ा रोचक है। और इससे इस क्षेत्र के विगत लोक-जीवन पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है।

भारत में जाति-पांति का विकास व्यवसाय से प्रारम्भ होकर जन्म से सम्बन्धित हुआ माना जाता है। पहले तो जातियां चार ही थीं, जिनकी संख्या बढ़ते-बढ़ते हजारों हो गई। जातियों उपजातियों की इस निरन्तर वृद्धि के कारण चाहे जो भी रहे हों और जितने भी रहे हों पर उनमें से कुछ कारण यह भी रहे हैं कि कोई उपनाम, दोष, त्रुटि व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक अथवा सामाजिक घटना से सम्बन्धित रहा है तो कोई नाम किसी परिवार से संलग्न किया जाता रहा है। और फिर इसी नाम को कालान्तर में विवश होकर सम्बन्धित परिवार के सदस्य अपनी उपजाति के रूप में ग्रहन करते रहे हैं। अभी कुछ ही वर्ष पहले की बात है कि एक व्यक्ति बड़ा झगड़ालू प्रकृति का था। लोगों ने उसके नाम के साथ 'गुण्डा' उपनाम जोड़ दिया। आज उस व्यक्ति को मरे केवल १५ वर्ष ही हुए हैं पर उसके समस्त परिवार को 'गुण्डे' उपनाम से पुकारा जाता है और परिवार के सदस्यों को इस उपनाम से पुकारे जाने में कोई बुराई नहीं जंचती। काश्मीर की एक कहावत प्रसिद्ध है, किसी परिवार के आंगन में शहतूत का वृक्ष था। लोगों ने परिवार का नाम तुल डाल दिया (काश्मीरी में तुल का अर्थ शहतूत होता है)। अमुक परिवार के सदस्यों को तुल का उपनाम सुन कर बड़ा क्रोध आता, इस कारण एक दिन उन्होंने इस पेड़ को ही काट दिया पर तना अब भी बचा रहा। अत: उनके जान-पहचान के लोग उन्हें 'मोंड' (तना) कहने लगे। इस उपनाम से पिंड छुड़ाने हेतु परिवार के सदस्यों ने तने को जड़ों समेत खोद कर दूर फैंक दिया। पर इस प्रकार आंगन में जो गढ़ा बन गया उसके कारण परिवार 'खोड्ड' (गढ़ा) कहा जाने लगा। परिवार ने गढ़े को मिट्टी से भर दिया पर इस प्रकार जो छोटा सा मिट्टी का ढेर बन गया, इसके कारण उन्हें 'टेंग' कहा जाने लगा। काश्मीरी में ढेर का पर्याय 'टेंग' है। उपर्युक्त पर्वतीय क्षेत्र में भी जो ज्ञाति सूचक उपनाम उपलब्ध, होते हैं उनके पीछे भी विशेष पारिवारिक घटनाएं, वैवाहिक सम्बन्ध, व्यवसाय, सामाजिक पतन, आदि कारण ही हैं। इन नामों का उनकी वास्तविक जाति (ब्राह्मण, क्षत्री इत्यादि) से कोई भी मेल नहीं।

इस क्षेत्र में भिन्न-भिन्न जातियों में पाये जाने वाले विविध उपनाम जिन की संख्या लगभग २१० है, इस प्रकार विभाजित किए गये हैं :—

१. परम्परागत नाम (हिन्दु) :

क) ब्राह्मण :

ब्राह्मण	पंडित
खजूरिया	कौल
दत्त	काठ
पाधा	काक
शर्मा	तिक्कू
...	दर
...	भान
...	राजदान
...	राजगुरु
...	रैना
...	सराफ

ख) ठाकुर–राजपूत :

कटोच	चम्बयाल	भौरा
कोतवाल	जम्बाल	भाउ
काटिल	ठाकुर	राणा
गोंडया	पयासाल	राठौर
चिब	बाली	सेन
चाड़क	बज़ीर	

ग) वैश्य : गुप्ता डोगरा मेहता जंडयाल

घ) हरिजन : भगत रामदासिया लोहार

ङ) अन्य : गुसांई (जोगी)

हिन्दुओं में उपर्युक्त उपजाति सूचक परम्परागत नाम समीपवर्ती क्षेत्रों में भी उपलब्ध होते हैं।

अहिन्दु उपजातियां (परम्परागत)

आंइगर	खोजा	ग्यायक	राथर
ओखुन	खोखर	पीर	रिशु
कांजी	खांडी	बागवान	लोन
कांदिर	गनाई	बर	शापु
क्राल	गोंई (गोनी)	बेग	शेख
केलू	चक्कू	मुगल	सैयद
कटोच	जरगर	मत्तू	हाजी
कामगर	टाक	मलक	
खांजी	डार	मागरे	
खान	नाइक	मीर	

सोमसी

उपर्युक्त परम्परागत अहिन्दु उपजाति सूचक नामों की निम्न विशेषताएं देखने को मिलती हैं :—

क) सैयद, मुगल आदि नाम ऐतिहासिक जातियों के अवशेष हैं।

ख) कटोच, राथर (राठौर), डार (दर), मत्तू (मट्टू), रिशु (ऋषि), चक्कू आदि नाम हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं।

ग) आंईगर, कांजी, कांदिर (नानवाई), क्राल (कुम्हार), पीर, बागवान इत्यादि नाम पैत्रिक व्यवसाय जताते हैं।

घ) हाजी, शेख, खान इत्यादि नाम विशेष घटना के परिणाम स्वरूप उपार्जित बड़प्पन जताते हैं।

ङ) उपर्युक्त नाम समीपवर्ती अन्य क्षेत्रों में भी उपलब्ध होते हैं।

२. लोक में प्रचलित नाम (हिन्दु) :

क) ब्राह्मण :

ब्राह्मण	पंडित
कोप्पान – ?	घड़यावल
ड्लाड़े – ?	चकू
डिडान – बड़े पेट वाले	जितशी
	पजनू
दोम्थान – ?	मटु
	मटनी – मटन से आए
	संगान ?
	शानू ?

ख) ठाकुर :

ऊथान	गुगान	जिनविना
कुन्ता	गिचान	झव्वान
काजियान	घिशरान	टिलरवान
कुण्ढान	घच्चान	ठोल्लान
कस्सू	चाहान	डंडान
कोन्तान	चोवडाम	डटयान
खमाशान	चुडयान	डिढान
खेस्सान	छोरान	तुषरान
खोजान	जोहरान	थम्मान
गभ्भान	जित्तान	थथान
गाडान	जोनान	धर्यान

नेंगान	बंधराल	सोहि
नेंगलान	भूतयात	लेलान
पडयार	भडयार	लाहोली
पुड़ान्	मलवान	श्रंगरान
पोचरान	मोंइयान	शुपान
पोट्लान	भिघान	शुकान
पोच्चे	रंडान	संगत्यान
पक्कवान	रुकवाल	संग्रान
फराशान	रुनयाल	सोनान
फेंकुलान	सूमरया	हिमरान
ब्रगान	सोमरया	हरिपान
बलावरया		

ग) **वेश्य :** काले, इन्डयाल, फड़ये

घ) **हरिजन :** जोगियान, टिलगान, ड्लेनान, नाग, फेगीना, संगान

ङ) **अन्य : गद्दी :** उत्तम, सरदार, मेहराल, सूदन, सिप्पी

व्यक्ति परक : शिगोड़ो=शिगोड़ी, चमत्कार=चमत्कारन, किजीनू, दड़गी=दड़गन-लम्मन

उपर्युक्त लोक प्रचलित हिन्दु उपजाति सूचक नामों की निम्न विशेषताएं उपलब्ध होती हैं :

क) अधिकतर नामों में 'आन' प्रत्यय और कुछ एक में 'आल' प्रत्यय जुड़ा है इन प्रत्ययों का कारण स्पष्ट नहीं परन्तु इतना अवश्य है कि 'आन' प्रत्यय केवल इस क्षेत्र की उपजाति सूचक नामों में ही प्रयुक्त हुआ है और इस क्षेत्र के किन्हीं ग्राम नामों की सूची में भी यथा :—कल्होत्रान, घ्रीडान, चकान, चन्द्र भटान इत्यादि ।

ख) भद्रवाह के लोक जीवन में ब्राह्मण, ठाकुर और हरिजन तो सांझीदार रहे पर व्यापारी वर्ग (वेश्य) नहीं । सम्भवत: वे देर से व्यापार करने के लिए, इस क्षेत्र में आ बसे हों और इसी कारण उन्हें अभी तक कोई ऐसा उपनाम न मिला, जिसे उपर्युक्त सूची में समाविष्ट किया जा सकता ।

ग) कुछ ठाकुर-राजपूत उपनाम अपने पुराने नामों को अब भी आंशिक रूप में बनाए हुए है । केवल उन्होंने 'आन' प्रत्यय जोड़ लिया है । यथा :—
छव्वान=चौहान से, ठौल्लान=राठौर से ।

घ) कुछ उपनाम पिता से सम्बन्धित न रह कर माता (विशिष्ट स्थान, जाति, कुल या नाम की स्त्री) से सम्बन्धित हो गए हैं । जैसे :—

नैगान : नागा स्त्री से उत्पन्न सन्तति ।

खेस्सान : खस्स (खष) स्त्री से उत्पन्न सन्तति ।

गाडान : गादि ग्राम से लाई स्त्री की सन्तति ।

फेकुलान : माता का नाम फांकी था अतः फेकुलान कहलाए ।

थम्मान : किसी अवस्था में थम्म (*Pillar*) से विवाहित स्त्री की सन्तति ।

कुंढान : कुंडी ग्राम से विवाहित वधू की सन्तति ।

ङ) कुछ उपनाम घटना विशेष से सम्बन्धित हो गए हैं । यथा :—

जित्तान : लड़ाई में जीत हो जाने के कारण ।

रंडान : किसी विधवा के बेटे की सन्तति के कारण ।

खोजान : किसी मुसलमान परिवार की भूमि छीन लेने के कारण ।

धिश्रान : किसी सामाजिक पतन अथवा त्रुटि के कारण । (भद्रवाही में घिशरोई का अर्थ फिसलाहट है)

ढिडान : किसी सदस्य का पेट, परिवार में बड़ा था इसी से ढिडान (ढड पेट) नाम पड़ा ।

च) कुछ जातियों के नाम व्यवसाय से भी जुड़े हैं जैसे :—

फराशान : फराशों का काम करने वाले ।

ट्लिखान : बढ़ई का काम करने वाले ।

जोनान : गीत, कथा, आख्यान सुनाने वाले ।

ड्लेभान : ग्रहनी (किसी इष्टदेव के प्रभाव में आकर कांपना, नाचना और फिर किसी भविष्यवाणी या रोग शोक के कारण को बतलाना । इस प्रकार की प्रक्रिया पहाड़ के कई देवालयों में होती रही है) देने वाले ।

परन्तु कुछ एक जातियों के उपनामों के कारण फिर भी अस्पष्ट ही रह जाते हैं जैसे पुड़ान, पोच्रान, डिडान, दोन्थान, कोप्पान, ड्लाड़े, संगान इत्यादि ।

पर्वतीय क्षेत्र में हमें कुछ उपहासपूर्ण निन्दा सूचक अथवा छेड़ वाले नाम भी मिलते हैं जो उपनाम के रूप में तो प्रयुक्त हुए हैं पर उपजाति के नाम के रूप में नहीं । क्योंकि यह उपनाम किसी व्यक्ति विशेष या उसकी पत्नी तक ही सीमित रहे, उस व्यक्ति के परिवार से उन्हें संलग्न नहीं किया गया । पर एक बार जब उसे वह नाम दिया गया तो आजीवन वह फिर उसी नाम से पुकारा जाता रहा; यहां तक कि व्यक्ति का विवाह हो जाने पर बेचारी पत्नी को भी अपने पति का उपहासपूर्ण उपनाम मिला । इलाका कैलाड़ के ऐसे ही कुछ रोचक उपनाम इस प्रकार है :—

शिगोड़ो (पति)=शिगोड़ी (पत्नी)
चमत्कार (पति)=चमत्कारन (पत्नी)
किज़ानू
दड़गी (पति)=दड़गन (पत्नी)–लम्मन (स्त्री विशेष)
ढलड़िया
चुग्गी

उपर्युक्त सभी लोक प्रचलित उपनाम अन्य क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं।

अहिन्दु :

औतुर	दरजी	बाइ (बानी)
कीम	दांद (बैल)	वाज (रसोईए)
केम (कीड़े–कृमि)	नजार (बढ़इ)	शाल (गीदड़)
कोकड़ (मुर्ग)	नरनू – ?	सोहिल – ?
खोड़ (गढ़े)	पडर – ?	सरवाल – ?
गगड़ (चूहे)	पड़ेई – ?	सांबरी – ?
छान (बढ़ेइ)	बिच्च (बिच्छू)	सिंह (शेर)
जुलई (जुलाहे)	भोरा – ?	हापथ (रीछ)
डग्ग – ?	मत्तू (पागल)	हब्बश (हब्बशी)
तेली	मोची (चर्मकार)	हजाम (नाई)
तांत्रिक (तन्त्र ज्ञाता)	मटू – ?	हकीम (वैद)
दिव (देव)	रंगिर (रंगरेज)	

उपर्युक्त में से अधिकतर उपनाम मूर्ख अथवा दुष्ट प्राणियों से सम्बन्धित किए गए हैं यथा चूहे, बैल, गीदड़, रीछ इत्यादि। और ऐसा करने के पीछे किसी परिवार को सामाजिक रूप से अप्रतिष्ठित करने की दूषित मनोवृति रही है।

राजकीय डिग्री कालेज,
पूंछ, जम्मू काश्मीर–
पिन नं० १८६ १०८।

बिलासपुर जनपद में गाए जाने वाले भक्ति गीत : सांस्कृतिक विवेचन

—श्रीराम शर्मा

लोक-गीतों में भक्ति गीत अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन गीतों में देवी-देवताओं के प्रति लोक-मानस की प्रगाढ़ श्रद्धा एवं धार्मिक भावना व्यक्त हुई है। इस नश्वर जगत एवं मायाजाल में फंसे मानव मन को प्रार्थना एवं भजन से शान्ति प्राप्त होती है। बिलासपुर का जन-मानस जहां एक ओर सांसारिक हास विलास एवं मोहमाया में लिप्त है वहां दूसरी ओर वह दार्शनिक भी हो उठा है। बिलासपुर में विभिन्न देवी देवताओं—दुर्गा, शिव, राम, कृष्ण, बाबा बालक नाथ, मीरां एवं ज्ञान भाव से सम्बन्धित गीत गाए जाते हैं। इनके अलग-अलग परिचय से भक्ति गीतों की विशेषताएं आसानी से स्पष्ट हो सकती हैं।

देवी गीत मुख्य रूप से 'नवरात्रों' एवं धार्मिक पर्वों के उपलक्ष्य में गाए जाते हैं। मनौती (मन की इच्छा) के लिए देवी मन्दिरों में जाने पर ये गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में देवी को काली, दुर्गा, जगदम्बा, जगततारिणी एवं माता के नामों से सम्बोधित किया गया है। इन गीतों में देवी की स्तुति, उसके पराक्रम एवं मन्दिर की शोभा का वर्णन मिलता है। दुर्गा मां ने भक्तों एवं दु:खियों के कष्टों को दूर करने के लिए समय-समय पर अवतार लिया। वे कई रूपों में अवतरित हुई। देवी मां के इस महात्म्य को व्यक्त करने वाला एक गीत प्रस्तुत है :—

जै जैं माता जगतारणिये।
शेर सिंहासण बैंठी जे माता,
दुर्गा रूप धराये हैं।
बैल सिंहासण बैंठी जे माता,
शिव जीए रूप धराये हैं।
गरड़ सिंहासण बैंठी जे माता,
विष्णु रूप धराये हैं।
जै जै माता जगतारणिये।

उपर्युक्त गीत का भावार्थ है कि हे दुर्गा मां तूं जगत का पालन करने वाली है। तेरी सदा ही जय हो। मां दुर्गा तुम ने कई रूपों में अवतार लेकर पापियों का संहार किया तथा भक्तों की सहायता की। जब मां ने शेर का सिंहासन लिया तब वह दुर्गा के रूप में प्रकट हुई। बैल का सिंहासन धारण करने पर मां ने शिवजी का रूप धारण किया। गरूड़ सिंहासन ग्रहण कर मां ने

विष्णु का रूप धारण किया। कहने का भाव है कि दुःखियों के दुःखों को दूर करने के लिए मां ने कई रूप धारण किए।

देवी मां की शक्ति एवं महिमा से सम्बन्ध एक अन्य गीत प्रस्तुत है :—

तेरे चरणां रे निच्चे गंगा बगदी—
बगदी नीं शेरां वालिये।
कन्ने जोतां जगदी, जगदी नीं शेरां वालिये।
तेरे पैरां जो झांजर मंगवा दूं—
कन्ने बोरां लादूं, लादूं नीं शेरां वालिये।
तेरे अंगे जो साड़ी मंगवा दूं—
कन्ने गोटा लादूं, लादूं नीं शेरां वालिये।
तेरे चरणां रे निच्चे गंगा बगदी—
बगदी नीं शेरां वालिये।

शेर के सिंहासन पर विराजमान हे दुर्गा मां, तेरे चरणों के नीचे से पवित्र गंगा की धाराएं निकलती हैं और मन्दिर में हर क्षण ज्योति जलती रहती है। यह ज्योति जगत में फैले अज्ञान के अन्धकार को दूर कर ज्ञान एवं समृद्धि का प्रकाश करती है। देवी मां तुम मेरे कष्टों को दूर करो। मैं तेरे पैरों को सुन्दर झामरें पहनाऊंगा तथा झामरों में सुन्दर 'बोरां' लगवाऊंगा। गीत में आगे कहा गया है देवी मां मैं तुम्हारे लिए एक सुन्दर गोटे वाली साड़ी भेंट करूंगा, तुम मेरे कष्टों का निवारण कर दो। इन गीतों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि बिलासपुर के लोगों में 'शक्ति' का काफी प्रभाव है। लेकिन शाक्त प्रभाव के होते हुए भी यहां के लोग साम्प्रदायिक कट्टरता से मुक्त हैं।

शिव भक्ति से सम्बद्ध अनेक लोक गीत बिलासपुर क्षेत्र में प्रचलित हैं। इन गीतों में शिव के कल्याणकारी रूप को प्रस्तुत किया गया है। कैलाशपति शिव जी प्रत्येक दुःखिया के दुःख को हरण करने वाले देवता के रूप में प्रसिद्ध हैं। जो व्यक्ति सच्ची लग्न एवं शुद्ध भावना से शिव स्तुति करता है उसकी हर कामना पूरी होती है। शिव महिमा से सम्बद्ध एक भक्ति गीत प्रस्तुत है :—

शिव रट्टी ले रे मना शिव रट्टी ले,
खोल दे दिल बटणां, शिव रट्टी ले।
कौण जावे डोली डंडी, कौण सुकपाल,
कौण जावे पैर पताहृणें शिवजी रे दरबार।
राणी जावे डोली डंडी, राजा सुकपाल,
साधु जावे पैर पताहृणें, शिवजी रे दरबार।
राजा मांगे अन्न धन, रानी मांगे पूत,
साधू मांगे छत्र छाया शिवजी रे दरबार।

उक्त गीत का भाव है कि शुद्ध भाव से शिव का नाम लेने से हर व्यक्ति की इच्छापूर्ण हो जाती है। राजा से लेकर साधु-सन्यासी तक शिव का सुमरिन करते हैं। राजा एवं रानी डोली में बैठ कर शिवजी के दरबार में जाते हैं जबकि साधु वैरागी नंगे पांव ही पहुंच जाते हैं। राजा लोग अन्न धन एवं पुत्र रत्नों की प्राप्ति के लिए जाते हैं लेकिन साधु केवल शिवजी के दर्शनों के लिए ही जाते हैं। राजा महाराजा से लेकर वैरागी तक शिव को अपना अराध्य स्वीकार करते हैं। डमरू, त्रिशूल धारण कर बैल की सवारी करने वाले भोले भंडारी शिव बिना किसी भेद भाव से लोगों के दुःखों का निवारण करते हैं।

बिलासपुर क्षेत्र में कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित अनेक गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का चित्रण रहता है। भगवान कृष्ण की लीला अपरम्पार है। वह अनेक रूपों में दुःखियों की सहायता करते हैं। कृष्ण लीला से संबद्ध एक गीत प्रस्तुत है :—

भल्या कृष्णां तेरियां कुदरतां,
कई रंगां बिच खेलदा।
कईयां जो देंदा हलुवा पुरियां,
कईयां जो तुड़का तेल दा।
कईयां जो देंदा लेहफ रजाईयां,
कईयां जो बिस्तर रेत दा।
भल्या कृष्णां तेरियां कुदरतां,
कई रंगां बिच खेल दा।

भगवान कृष्ण कई रूपों में भक्तों के दुःखों का निवारण करता है। इस दुनियां में वह कई रूपों में अपनी लीला दिखाता है। उसकी कृपा से कई लोग अनेक सुख प्राप्त करते हैं तथा कई लोग सारा जीवन अज्ञानता के कारण दुःख में ही व्यतीत कर देते हैं। कई लोग स्वादिष्ट भोजन एवं रहने के लिए अच्छी जगह प्राप्त कर लेते हैं तथा कई भूखे एवं बिना घर के ही रह जाते हैं। जो व्यक्ति कृष्ण की भक्ति नहीं करते उनका जीवन अभावों एवं दुःखों में ही समाप्त हो जाता है।

इस नश्वर जगत में कृष्ण भक्ति के अतिरिक्त भक्त का दूसरा कोई सहारा नहीं होता। सगे सम्बन्धी एवं मित्र तब तक ही साथ देते हैं जब तक कि उनका स्वार्थ हो। इस भाव को व्यक्त करने वाला एक गीत प्रस्तुत है :—

खुदगरज जमाना श्याम मेरे,
इस दुनियां में अपणां कोई नइं।
जब पैसा म्हारी गाठी में,
मित्तर म्हारे लक्खां थे।
पैसा बचारा मूक गया,
मित्तर म्हारा कोई नइं।

हे कृष्ण भगवान यह दुनियां बहुत ही स्वार्थी है। आपके सिवाए इस दुनियां में हमारा कोई नहीं है। जब हमारे पास धन दौलत एवं ऐश्वर्य की वस्तुएं थी, हमारे अनेक मित्र थे। जैसे ही पैसा

एवं धन दौलत समाप्त हुई, मित्रों ने भी साथ छोड़ दिया। इस जगत में कृष्ण ही सबका दाता है, रक्षक है।

कृष्ण भक्ति गीतों में कृष्ण राधा के संयोग एवं वियोग प्रसंगों का वर्णन भी उपलब्ध होता है। कृष्ण को महाभारत विजय करने के लिए राधा को छोड़ना पड़ा। कृष्ण के जाने पर राधा मथुरा में अकेली रह गई। जब श्रीकृष्ण महाभारत के लिए चलने लगे, राधा उनसे जल्दी लौटने का आग्रह करने लगी :—

श्यामा आप चले महाभारत को,
मेरी उम्र गुजर गई गोकुल में,
श्यामा जाते समय मंदर बना जाणां,
पूजा करूंगी अकेली,
जल्दी आ जाणां।
श्यामा आप चले ....।

राधा श्रीकृष्ण से कह रही हैं कि आप महाभारत विजय के लिए जा रहे हैं। मैं यहां पर अकेली रह जाऊंगी। राधा आगे कहती है कि जाते समय आप मन्दिर बनवा जाना। मैं मन्दिर में दिन रात पूजा करती रहूंगी। आप महाभारत के पश्चात् शीघ्र लौट आना, मैं आपकी प्रतीक्षा करती रहूंगी।

कृष्ण भक्ति गीतों में प्रायः कृष्ण की मनोहरी छवि, बचपन की अठखेलियों, गोपियों के साथ प्रेम क्रीड़ाओं एवं कृष्ण का लोक कल्याणकारी रूप सामने आया है। अनेक गीतों में कृष्ण को दुःखों एवं विपत्तियों का संहारक एवं गरीबों की सहायता करने वाला माना गया है।

राम भक्ति गीतों में राम का कल्याणकारी रूप ही अधिक व्यक्त हुआ है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम एवं जगत पालक माना गया है। राम ने सदैव दुष्टों-दानवों का संहार कर दीन-दुखियों का कल्याण किया। जब-जब धरती पर पापों का भार बढ़ा राम ने अवतार लेकर पापियों का नाश कर, धर्म की रक्षा की। राम सुमरिन से संबद्ध के गीत प्रस्तुत हैं :—

राम गुण गा ले, ये जीवन बना ले,
ये जीवन दो दिन का।
ये जीवन पेड़ री लकड़ी,
आग लगे जली जावे,
समझ नी आवे,
ये जीवन दो दिन का।
राम गुण गा ले.........।

पूर्व जन्म का फल हम इस जन्म में भोगते हैं। जो कर्म हम इस जन्म में करते हैं उनका फल आने वाले समय में भोगना पड़ता है। इसलिए हे प्राणी, राम के नाम का गुनगान कर ले। यह जीवन क्षण भंगुर है। किसी भी पल समाप्त हो सकता है। जिस तरह पेड़ की लकड़ी आग लगने

से समाप्त हो जाती है, उसी तरह से यह रहस्यमयी जीवन लीला भी समाप्त हो जाती है। राम नाम के जाप से ही हम इस माया जाल से मुक्त हो सकते हैं।

हे मानव, राम के नाम का गुनगान कर ले। राम को छोड़ कर इस दुनियां में तेरा कोई नहीं है। राम नाम के बिना इस माया जाल से मुक्ति नहीं मिलेगी। इससे सम्बद्ध के गीत प्रस्तुत हैं :—

अपणां कोई बी नीं महाराज,
अपणां वो ई दाता राम।
हड्ड जले बन री लकड़ी,
केस जले ज्यूं घासा,
स्यूने री मूरत जल गई,
हो गया सुरगवासा।
अपणां कोई बी नीं महाराज,
अपणां वो ई दाता राम।

उपर्युक्त गीत में राम महिमा का गुणगान मिलता है। गीत में कहा गया है कि भगवान राम ही सबका पालन कर्त्ता है। राम को छोड़ कर दूसरा कोई भी अपना नहीं है। यह शरीर भी मिट्टी का बना हुआ है, न जाने किस समय नष्ट हो जाएगा। मानव शरीर की हड्डियां लकड़ी की तरह तथा केश घास के समान एक क्षण में जल जाते हैं। जैसे ही मानव की अस्थि पिंजर जलता है, सभी लोगों का साथ छूट जाता है। केवल राम नाम ही साथ जाता है। इसलिए प्राणी तूं, राम नाम का स्मरण किये जा।

राम भक्ति गीतों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि राम को लोक कल्याणकारी एवं ईश्वर के रूप में स्वीकार किया गया है। राम को कष्ट निवारक, दु:खियों का पालनहार एवं दानवों का संहारक माना गया है। राम नाम जपने में ही जीवन की सार्थकता स्वीकार की गई है। अत: कहा जा सकता है कि राम भक्ति के प्रति लोगों की अडिग श्रद्धा रही है।

सिद्ध श्री बाबा बालकनाथ के प्रति भी बिलासपुर वासियों के मन में अगाध श्रद्धा है। बाबा जी से सम्बन्धित अनेक भक्ति गीत यहां के लोक समाज में प्रचलित हैं। बाबा बालक नाथ में एक अद्भुत शक्ति थी। आज भी लोगों का उन पर विश्वास है। लोक गीतों में बाबा बालकनाथ की महिमा का वर्णन कई तरह से मिलता है। निम्नांकित भक्ति गीत में बाबा की सुनहरी जटाओं एवं महिमा का वर्णन हुआ है।

स्यूने रंगीवां जटाओं वाला आया,
नीं भाग जागे संगतां रे।
कोई बोले स्वामी मेरा,
कोई कहे दाता ये,
कोई बोले सिद्ध जोगी,
कोई कहे विधाता ये।

स्यूने रंगीवाँ जटावाँ बाला ग्राया,
नीं भाग जागे संगतां रे।

सोने जैसी सुन्दर जटाओं वाले बाबा के आने से भक्त जनों के भाग जाग गए। बाबा को देखकर कोई सिद्ध, कोई स्वामी, कोई जोगी तथा कोई भगवान कहने लगा। ये सब बाबा की अद्भुत शक्ति का ही परिणाम था। जैसे ही भक्तों ने बाबा जी के दर्शन किये, उनके कष्टों का निवारण हो गया।

मीरां ने कृष्ण भक्ति में अपना सर्वस्व लुटा दिया था। मां-बाप, भाई-बहन, सास-ससुर, पारिवारिक बंधनों, रीति-रिवाजो एवं सांसारिक मोह को त्याग दिया था। मीरां का श्रीकृष्ण से सच्चा प्यार था। मीरां के इस सच्चे एवं अनूठे प्रेम से सम्बन्धित अनेक लोक-गीत बिलासपुर में गाए जाते हैं।

कृष्ण भक्ति के लिए मीरां ने संसार के सारे वैभव त्याग दिये। सास ससुर एवं समाज के व्यंग्यों को झेला :—

मीरां चल्ली जां कृष्ण पूजन जो,
सस्स बो कैंहदी ताँ सौरां बी कैंहदा,
मीरां तैं क्या लाज लाई,
हलवा–पूरी छड़ के,
सुक्के टुकड़े खांदी।
मीरां चली जां कृष्ण पूजन जो।

मीरां जब श्रीकृष्ण की पूजा के लिए घर से निकल पड़ी तो उसकी सास एवं ससुर कहने लगे कि तूं ने हमको शर्मिन्दा कर दिया है। लोग हम पर भी ताने कसते हैं। घर के सारे वैभव त्याग कर तूं जंगलों की शरण ले रही है। स्वादिष्ट व्यंजन त्याग कर सूखे टुकड़े खाने शुरू कर दिये हैं। लेकिन मीरां ने किसी की भी नहीं सुनी और जंगल-जंगल में भटकते हुए भी श्रीकृष्ण की भक्ति की।

जब मीरां ने कृष्ण भक्ति नहीं छोड़ी तो उन्हें कई प्रकार की यातनाएं दी गईं। मीरां ने सभी यातनाओं को खुशी-खुशी स्वीकार किया। यह कृष्ण की ही भक्ति का चमत्कार था कि इन यातनाओं का मीरां पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस भाव को व्यक्त करने वाला एक गीत प्रस्तुत है :—

राणा जी ने भेज्या जहर प्याला,
मीरां समझी अमरत प्याला।
देखो मीरां री तकदीर,
बण गई श्याम री तस्वीर।
राणा जी ने भेज्या सांप पटारी,
मीरां ने समझया कृष्ण मुरारी।

मीरां के श्वसुर ने मीरां को कृष्ण की भक्ति से अलग करने के लिए कई यातनाएं दीं। मीरां को बिष का प्याला दिया गया। मीरां ने उसे कृष्ण के चरणों का अमृत समझ कर पी लिया। दूसरी बार मीरां के पास एक जहरीला सांप पिटारी में बन्द करके भेजा गया। मीरां ने कृष्ण की मूर्ति समझ कर पिटारी को खोला। यह कृष्ण के प्रति उसकी सच्ची भक्ति का ही परिणाम था कि सांप कृष्ण की मूर्ति में बदल गया। मीरां ने यातनाएं सही, वैभव छोड़ा लेकिन कृष्ण भक्ति को नहीं छोड़ा।

मीरां से सम्बद्ध गीत आदर्श प्रेम और भक्ति के परिचायक हैं। इन गीतों में मुख्य रूप से मीरां का कृष्ण के प्रति असीम प्रेम व्यक्त हुआ है। लोक मानस मीरां कृष्ण के प्रेम को आदर्श प्रेम के रूप में स्वीकार करता है।

बिलासपुर जन जीवन में ज्ञान एवं वैराग्य भाव से सम्बन्धित गीत भी प्रचलित हैं। इन गीतों में शरीर की नश्वरता, आत्मा की शाश्वतता एवं जगत के झूठे सम्बन्धों का चित्रण हुआ है। इन गीतों में विभिन्न सम्प्रदायों एवं मतों को छोड़ कर एक प्रभु के प्रति सच्ची लग्न एवं भक्ति करने पर जोर दिया गया है। गीतों में कहा गया है कि मानव को राम, कृष्ण, शिव एवं विष्णु के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए। एक ही प्रभु के ये कई नाम हैं। इनमें आत्मा को परमात्मा का अंश स्वीकार किया गया है। हमारा शरीर नाशवान है केवल आत्मा शाश्वत है। इसलिए मानव को अपनी आत्मा की शुद्धता एवं पवित्रता का ध्यान रखना चाहिए। वादों एवं प्रतिवादों को त्यागकर एकेश्वरवाद की भावना इन गीतों में व्यक्त हुई है। ज्ञान तत्वों से परिपूर्ण ये लोक-गीत बिलासपुर के लोगों की दार्शनिक चेतना को व्यक्त करते हैं।

मानव को इस जगत में भगवान ने हरि का भजन करने के लिए भेजा था लेकिन वह इस जगत में आकर माया के जंजाल में फंस गया। धन दौलत को इकट्ठा करने लगा और संसार के झूठे बन्धनों में बन्ध गया। लेकिन इस नाशवान जगत की कोई भी वस्तु जीव के साथ नहीं जाएगी। इस भाव को व्यक्त करने वाला एक गीत प्रस्तुत है :—

क्या धन मांगदा बंदे,
इक्क दिन मिट्टी में मिल जाणां।
लकड़ी कहे लुहार से, तूं नित उठ कट्टे,
इक दिन ऐसा आणां, मैं भी जलाणा तुझ को।

उपर्युक्त गीत में कहा गया है कि हे मानव ! तूं धन के मोह में क्यों पड़ा है। धन यहीं रह जाएगा। और तूं मिट्टी में मिल जाएगा। लुहार दिन और रात लकड़ी काटता रहता और उससे धन कमाता रहता है। अन्त में लकड़ी द्वारा लुहार को चेतावनी दी गई है कि एक दिन ऐसा आएगा जब मैं भी तुझ को जला डालूंगी। अत: व्यक्ति को धन का लोभ छोड़ कर ईश्वर भजन करना चाहिए।

सांसारिक माया जाल से बाहर निकलने का एकमात्र उपाय ईश्वर भक्ति है। ईश्वर भक्ति से ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। एक गीत प्रस्तुत है :—

करो हरि नाम रा सुमरण,
जे मुक्ति को पाणां है।
चरण धुलाणें बारंबार,
अमरत हो जायेगा।
होगी नैया पार,
अमरत हो जायेगा।
करो हरि नाम रा सुमरण,
जे मुक्ति को पाणां है।

हे मानव अगर तु ने इस माया-जंजाल से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करनी है तो हरि के नाम का जाप कर। ईश्वर के चरणों का अमृत पीने से तूं अमर हो जाएगा और सांसारिक माया जालों से मुक्ति मिल जाएगी।

हरि का भजन करने के लिए सच्ची भक्ति एवं शुद्ध भावना की आवश्यकता होती है। यह काम साधारण व्यक्ति के वश का नहीं है :—

हरि माला तेरा,
जपन कठण है।
तेरा जपन कठण है,
तेरा भजन कठण है।

अर्थात् हरि नाम की माला का जपन एवं भजन करना कठिन कार्य है।

हरि नाम का जाप करना तो कठिन कार्य है लेकिन इसके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए हे प्राणी तूं हरि नाम की बूटी को घोल-घोल कर पी ले। गीत प्रस्तुत है :—

बूटी पी ले बंदया,
हरि नाम री घोल घोल के।
बूटी पीती धन्ने जट्ट,
हो गए हरि प्रगट।
बूटी पी ले बंदया,
हरि नाम री घोल घोल के।

हे मानव हरि नाम की बूटी घोल-घोल कर पी ले। जो व्यक्ति हरि नाम का भजन करता है उसे भगवान अवश्य दर्शन देते हैं। धन्ना जाट ने सच्चे दिल से भगवान की भक्ति की और भगवान ने उसे साक्षात दर्शन दिये। इस लिए मायाजाल से मुक्त होने के लिए हर व्यक्ति को सच्चे दिल से ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए।

परमात्मा ने आत्मा को जीव के रूप में इस संसार में भेजा लेकिन जीव यहां मोहमाया में फंस गया। उसने राम भजन ही छोड़ दिया। गीत प्रस्तुत है :

बंदा भेज्या था राम नाम जपणें जो,
ओम् नाम जपणें जो,
माया ने जंजाल पा लेया,
कित्थी भुल्लि नीं जाईं,
ओ मना मेरेया,
ऊंच्चे निच्चे पहाड़ टप्पणें।
बंदा भेज्या था राम नाम...... ।

उपर्युक्त गीत का भावार्थ है कि इस संसार में मनुष्य का परम लक्ष्य भक्ति की प्राप्ति है। मूक्ति प्राप्त करने का सब से उचित ढंग राम भजन है। लेकिन मनुष्य यहां आकर सांसारिक मोह माया में फंस गया और राम नाम को भूल गया। आगे कहा गया है कि हे मन, राम नाम को मत भूल। अभी तुझे बहुत से कठिन मार्गों से आगे जाना है। इन कठिन मार्गों को पार करने के लिए राम भजन करना बहुत ही आवश्यक है।

हरि का नाम लेने से मन को शान्ति पाप्त होती है। इस लिए भगवान प्रेम को पाने के लिए व्यक्ति को दूर से दूर तक चले जाना चाहिए। भगवान उसी को प्राप्त होता है जो सच्ची लग्न से उसकी भक्ति करते हैं। इस भाव को व्यक्त करने वाला एक गीत प्रस्तुत है :

हरि उन्हां जो मिलदे,
जिन्हां रियां नित्तां अच्छियां।
नां हरि मिलदे गंगा में जाकर,
गंगा च रैंह्दियां मच्छियां।
नां हरि मिलदे जंगलों में जाकर,
जंगलां च फूल कन्ने पत्तियां।
हरि उन्हां जो मिलदे,
जिन्हां रियां नित्ताँ अच्छियाँ।

कहने का भाव है कि हरि दर्शन उनको होते हैं जो साफ दिल एवं सच्ची लग्न से उसकी भक्ति करते हैं। जो व्यक्ति ढोंग, छल एवं कपट मात्र करता है, उसे कभी भी भगवान प्राप्त नहीं होता चाहे वह लाख कोशिश कर ले। गंगा में स्नान करने से भी भगवान नहीं मिलता, नहीं तो आज तक मछलियां भी इस माया जाल से मुक्त हो गई होतीं। जंगलों में रहने से भी भगवान नहीं मिलते। जंगलों में वृक्ष, फूल एवं पत्ते ही होते हैं। कहने का अर्थ है कि भगवान को प्राप्त करने के लिए सच्ची भक्ति की आवश्यकता होती है।

ज्ञान एवं वैराग्य भाव से सम्बद्ध गीतों में हरि, नारायण, ईश्वर एवं ब्रह्म के निरंकार रूप के प्रति लोगों की भक्ति भावना व्यक्त हुई है। इन गीतों में मुख्य रूप से ब्रह्म की सत्यता एवं जगत के मिथ्या स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। प्राणी को आत्मा की शुद्धता पर ध्यान देना

चाहिए। परमात्मा की सत्यता एवं सत्ता को स्वीकार कर सच्चे मन से प्रभु की भक्ति करनी चाहिए। तभी जीव इस मोह माया के जाल से मुक्ती हो सकता है।

बिलासपुर क्षेत्र में प्रचलित भक्ति गीतों के विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें ईश्वर के सगुण रूप के साथ निर्गुण रूप पर भी प्रकाश डाला गया है। इन गीतों में जहां एक ओर देवी, शिव, कृष्ण, राम एवं बाबा बालकनाथ के प्रति लोगों की श्रद्धा एवं भक्ति भावना व्यक्त हुई है वहां दूसरी ओर ब्रह्म की सत्यता, जगत की मिथ्यता एवं मोह माया के जाल पर भी प्रकाश डाला गया है। मोह माया के इस भ्रम से व्यक्ति तभी मुक्त हो सकता है जब वह सच्चे मन से परमात्मा की भक्ति करेगा। इसलिए कहा जा सकता हैं कि भक्ति गीत आत्मा, परमात्मा, जीव जगत के साथ ही ब्रह्म के विविध रूपों को भी स्वाभाविक एवं सरल ढंग से व्यक्त करते हैं।

पी०एच०डी शोध छात्र हिन्दी विभाग
हिमाचल विश्व विद्यालय
शिमला–५

स्वप्न फल दायिनी–देवी सिमसा

—शशिकान्त शास्त्री

प्राचीन काल से ही हिमाचल प्रदेश को देवों की धरती के नाम से पुकारा जाता है। मेलों, त्योहारों व अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अन्य प्रदेशों की तरह हिमाचल में भी अनेक विशाल भव्य देवी देवताओं के मन्दिर विद्यमान हैं। जिनमें ज्वालामुखी कांगड़ा, ब्रजेश्वरी, चामुण्डा, नैनादेवी, चिन्त्यपूर्णी, आशापुरी और देवी सिमसा जैसे तीर्थ स्थलों के नाम आते हैं। जहां कि चित्रकला व प्राकृत सुन्दरता दर्शकों का मन मोह लेती है। प्रदेश के जिला मण्डी में एक ऐसा ही देवी का मन्दिर ऊंची पहाड़ी पर स्थित है, जो बैजनाथ के निकट लडभड़ोल से छः किलोमीटर पर और जहां कांगड़ा और मण्डी का भी संगम है। यह बिनवा दरिया से लगभग चार किलोमीटर की दूरी पर चारों ओर से विशाल चट्टानों से घिरा हुआ घने वांसों के झुंड के पास यह पवित्र देवी का स्थान है। इस मन्दिर के पास एक बहुत बड़ा गांव है, जिसे सिमस के नाम से पुकारा जाता है। इसी कारण ही इस मन्दिर का नाम सिमसा देवी पड़ा, सिमसा का मन्दिर वास्तव में शारदा माता का है।

प्रादुर्भाव :

शताब्दियों पूर्व इस मन्दिर का निर्माण हुआ। कथा के अनुसार एक ग्रामीण जो नित्य प्रति जंगल में धरती से निकलने वाली एक प्रकार की जड़ी जिसे प्रादेशिक भाषा में 'तरड़ी' कहते हैं, जो कि धरती से काफी गढ़ा खोद कर निकाली जाती है, को खोदता था। उस व्यक्ति का यह प्रतिदिन का काम था। और उससे सब्जी बना कर अपना तथा अपने परिवार का गुजारा चलाता था। एक दिन ज्यों ही उसने खोदना शुरू किया, तो उस जगह से लाल रंग का पानी निकलने लगा। जो बिल्कुल खून की तरह था। वह घबराया और खुरपी-कुदाल वहीं छोड़े और घर लौट आया और इसी सोच में पड़ कर जब वह रात में सोया था, तो उसे स्वप्न में एक देव कन्या ने दर्शन दिए और कहा कि मैं देवी हूं। और तुम वहां जाकर धरती से मेरी मूर्ति को निकाल कर किसी अच्छे स्थान पर स्थापित कर दो तुम्हारी सब इच्छा पूरी होगी। और साथ ही एक बात का ध्यान रखना कि जहां पर मुझे उठाने में भारीपन मालूम होगा वहीं मन्दिर की स्थापना कर देना इतना कहने पर देवी आदृश्य हो गई। गढ़े खोदने के कारण से उसका नाम टोभासिंह प्रसिद्ध था, क्योंकि पहाड़ी भाषा में गढ़े को टोभा कहा जाता है। उसने प्रातः ही समस्त ग्राम वासियों को इकट्ठा करके रात के स्वप्न को साकार करने का आग्रह किया। और उस स्थान से मिली एक पत्थर के बने पिण्ड रूप को एक डोले में रखकर वाद्य-संगीत व लोक धुनों द्वारा सुसज्जित किया। ज्यों ही उस डोले को लेकर सिमस गांव के समीप पहुंचे, तो वह डोली भारी हो गई, और उन्होंने वहीं पर

स्थापना करना उचित समझा, उसी समय से इस मन्दिर के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ने लगी। गांव सिमस के नाम पर ही इस मन्दिर का नाम सिमसा पड़ा।

धरना देना और स्वप्न की इन्तजारी :

वैसे तो हर देवी के तीर्थ स्थानों का अलग-अलग महत्व और चमत्कारपूर्ण है। फिर भी इस मन्दिर के प्रति एक अत्यन्त रोचक बात है। जिस नारी के सन्तान न होती हो तो वह नारी यहां आकर मनोकामना पूरी करती है। नारियां श्रद्धापूर्वक नौ दिन यहां रह कर पवित्रता से संतानेच्छु स्वप्न में इन्तजार करती हैं। मन्दिर के चारों ओर कम्बल ओढ़ कर लेटी हुई तथा स्वच्छ जल से पूर्ण एक लोटा और उस पर लगा धूप सुगन्धित देवी के दरबार को मलयाचल बनाता है, भक्तों के मन को विमुग्ध करता दिखाई देता है। नवरात्रों के दिनों में मन्दिर की परिक्रमा तक करना मुश्किल हो जाती है। हठ करके बैठना या लेटे रहना ही धरना कहा जाता है।

देखने वाली बात यह है कि जिस औरत को इन दिनों सोये हुए मासिक धर्म हो जाए तो सब सन्तानेच्छु नारियों को जो धरने देती हैं, इकट्ठी होकर नहाना पड़ता है।

स्नान का महत्व :

ऐसा कहा जाता है कि बावली पहले मन्दिर के पास ही थी। और किसी समय धरने देती औरत को मासिक धर्म हो गया, और उसने भय के मारे उसी बावली में स्नान कर लिया जिसके कारण देवी रूष्ट हो गई। और शाप दिया कि जिस प्रकार मुझे कष्ट दिया और स्वच्छ जल को गन्दा किया। इसी तरह समस्त सन्तान पाने की इच्छुक नारियों को कष्ट उठाना पड़ेगा। और वहां पानी सूख गया और मन्दिर से $\frac{1}{2}$ किलोमीटर नीचे निकलने लगा। जो कि वहां से मन्दिर की ओर आने पर बिल्कुल सीधी चढ़ाई का सामना करना पड़ता है।

अब ऐसा है कि नवरात्रों के दिनों धरने देती किसी भी औरत को मासिक धर्म आ जाए तो समस्त लेटी हुई नारियों को जाकर उस बावली में स्नान करना पड़ता है।

स्वप्न में फल प्राप्ति :

जिस पर देवी की कृपा हो उसे देवी मन चाहा फल देती है। पुत्र चाहने वालों को फल, मेवा, अखरोट इत्यादि और कन्या पक्ष में ककड़ी व अन्य सब्जी वगैरा और जिस पर माता की कृपा न हो उसे घास काटने की दराती, रस्सी या चींटियों जैसे जीव बेचैन कर देते हैं। और ये सत्य है, इस देवी के दर्शनों का प्रदेश के बाहिर के बहुत से श्रद्धालु लाभ उठा चुके हैं। और हर वर्ष भारी संख्या में लोग माता के दर्शनों को आते हैं।

दर्शनीय स्थान :

मन्दिर के दक्षिण की ओर लगभग चार किलोमीटर की दूरी पर नीचे त्रिवेणी महादेव का पवित्र स्थान है, जो व्यासा, विनवा, क्षीर गंगा जैसी नदियों के संगम के समीप है। जो प्राकृतिक दृष्टि में भी देखने योग्य स्थान है। मन्दिर की थोड़ी ही दूरी पर कुड़ ग्रां नाम का प्राकृतिक छटा

को निहारता हुआ सुन्दर स्थान है। जो पहाड़ की एक बड़ी चट्टान उस गांव में रहने वाले लोगों के मकानों को ढकने का मानो उसी ने ही कार्यभार सम्भाला है। उन घरों के ऊपर स्लेट वगैरा नहीं हैं। केवल पहाड़ी चट्टान ने ही छाते का काम किया है, उसी के भीतर एक गुफा है, जिसमें एक शिव का सुन्दर मन्दिर है, वहां पर एक साधु रहता है। देखने वाली बात यह है कि पर्वतीय चट्टानों से गिरने वाली निरन्तर जल की बूंदें स्वय ही शिवलिंग बनाती हुई नजर आती हैं। इस स्थान को 'नगुहलिया' महादेव के नाम से भी पुकारा जाता है। हर तरह से यह स्थान देखने योग्य है धार्मिक मेलों के दिनों के अतिरिक्त भी अब तो प्रत्येक दिन लोगों का आवागमन रहता है। इस मन्दिर की देख-रेख कमेटी द्वारा होती है। यहां भट्ट जाति के लोग रहते हैं। जो रात-दिन देवी सिमसा के मन्दिर की पूजा वगैरा करते हैं। उस चढ़ावे से मन्दिर के सुधार का काम चलता है। नवरात्रों के दिनों में इस मन्दिर में भारी मेला लगता है। रंग-बिरंगी पोशाकों में ग्रामीण नर तथा नारी सजधज कर यहां की शोभा बढ़ाते हैं। कुछ तो अपने अपने ग्राम देवता को भी सजा करके मन्दिर में लाते हैं। उसके साथ वे नाचते हैं और गाते हैं।

अगर सरकार इन धार्मिक स्थानों का संरक्षण अपने हाथ में ले ले तो आने वाले श्रद्धालुओं को अधिक सुविधा मिल सकती है। अन्त में मैं इतना ही कहुंगा कि देवी सिमसा की पवित्र भूमि देखने योग्य है।

राजकीय उच्च बिद्यालय
मोलग, जिला कांगड़ा (हि०प्र०)
पिन–१७६०८६

हमारे तीर्थ स्थान तथा राष्ट्रीय एकता

श्रीमती मनोरमा शर्मा

भारत बहुत विशाल देश है। इसकी सीमा पर कहीं तो आकाश से बातें करने वाले पर्वत प्रहरी के समान खड़े हैं तो कहीं समुद्र इसके चरणों को पखार रहे हैं। इसके धरातल पर कल-कल करती, सर-सर बहती नदियां अविराम गति से समुद्र की ओर चली जा रही हैं जैसे कि चलना ही उनका काम है। उन पर बड़े-बड़े डैम बनते हैं, पुल बांधे जाते हैं पर चूं तक नहीं करती जैसे कि राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार हैं। पहाड़ों से झरने निर्झर शिलाओं की सहन शीलता को माप रहे हैं। पर्वतों से घिरी हरी-भरी घाटियां मूक भाषा में गीत गाती प्रतीत होती हैं। इसकी सस्यश्यामला भूमि मन को मुग्ध करती है। कहीं कोयल की कू-कू तो कहीं पक्षिराज मयूर का मन भावना नृत्य कहीं आम्रमंजरी झूल रही है तो कहीं चन्दन के पेड़ अपनी भीनी-भीनी सुगन्ध से वातावरण को लुभावना बना रहे हैं। कहीं शीत, कहीं घाम तो कहीं समशीतोष्णता। जिस बातावरण में मनुष्य रहना चाहे उसी में रह सकता है। मृत संजीवनी जैसी जड़ी-बूटियां इसी देश में उपलब्ध हैं जो मृत मानव में प्राणों का संचार कर देती हैं। ज्यों ही सूर्य इसकी परिक्रमा लेकर क्षितिज में मुखड़ा छिपाता है, चन्द्रदेव अपनी प्रिय चांदनी के साथ इसके संतप्त हृदय को सान्त्वना देने के लिए अवतरित हो जाता है। चांदनी में प्रकृति-नवेली की अठखेलियां देखते ही बनती हैं। हरी-भरी घास पर बिखरी चन्द्र किरणें अनायास विविध रंग-रंजित मखमल का जाल बुन देती हैं जैसे कि देवबालाएं रात्रि को उसी पर विश्राम करेंगी।

ओह ! फिर ऋतुराज बसंत। ज्यों ही बसन्त अपने दलबल के साथ पदार्पण करता है, भूमि की सुषमा ठाठें मारने लगती है। रंग-विरंगे फूल भूतल के विविध नक्षत्र बन कर उदित हो जाते हैं। बसन्त के स्पर्श से भूमि अंकुर के मिष से रोमांचित हो जाती है। सत्य है :—

ऋतुराज के राज में शोभा बने महान।
धन्य धन्य ऋतुराज रे प्रबल बने बलवान॥

काश्मीर से कन्याकुमारी तक हजारों वर्गमील में फैले हुए इस विशाल राष्ट्र की अखण्डता के बनाए रखने में हमारे तीर्थों का विशेष योगदान है। इसके भिन्न-भिन्न प्रान्तों में विविध प्रथाएं प्रचलित हैं, भिन्न-भिन्न पहरावे पहने जाते हैं तथा पृथक-पृथक भाषाएं बोली जाती हैं जो कि कदाचित राष्ट्र की अखण्डता में हस्तक्षेप कर सकती थीं परन्तु हमारे तीर्थस्थल एक आलोकस्तम्भ के समान अपनी सत्ता बनाए हुए हैं और संपूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोए हुए हैं। सत्य है :—

तीर्थ हमारे यह सदा करते बहु उपकार।
राष्ट्र को एक सूत्र में करते एकाकार॥

भारत का प्रत्येक प्रान्त हर दूसरे प्रान्त के तीर्थ के आगे मस्तक नमाता है। यह तीर्थ सारे प्रान्तों को एक पुंज में समेटे हुए हैं जिसे हम राष्ट्र की संज्ञा देते हैं। दक्षिण भारत का कोई ऐसा तीर्थ नहीं जो उत्तरी भारत के किसी भाई को मान्य न हो और उत्तरी भारत का कोई ऐसा तीर्थ नहीं जो दक्षिण भारत के किसी भाई को मान्य न हो। दक्षिण भारत के लोग उत्तरी भारत के तीर्थों के दर्शन से और उत्तरी भारत के लोग दक्षिण भारत के तीर्थों के दर्शन से अपने को कृत कृत्य समझते हैं। हमारे तीर्थ ही हमारी प्राचीन मूल संस्कृति का स्रोत हैं। इन तीर्थ स्थलों के माध्यम से ही हमारी आध्यात्मिक पिपासा शान्त होती आई है। यह तीर्थ स्थल ही हमारे पूर्वजों के तप, त्याग सहन-शीलता तथा विवेक का दर्शन करवाते हैं।

आज तो यातायात के विविध साधन उपलब्ध हैं, हम बस, रेल तथा वायुयान से घंटों में हजारों मील की यात्रा पूरी कर लेते हैं परन्तु आज से पूर्व सदियों में जबकि यह साधन उपलब्ध न थे और लोग कौए-कबूतर के माध्यम से संदेश भेजा करते थे तब भी लोग हजारों मील पैदल यात्रा करके तीर्थों के दर्शन पाकर अपने जीवन को सफल बनाते थे। तीर्थों के पण्डों की पुस्तकों में हम अपने दादा-परदादा के सैंकड़ों वर्ष पूर्व किये गए हस्ताक्षरों को देखकर दंग रह जाते हैं। धन्य थे वह हमारे पूर्वज जो महीनों भर पैदल यात्रा करके ऐसे दुर्गम स्थानों में पहुंच जाते थे। आज भी कुछ श्रद्धालु जन यातायात के साधनों के होते हुए भी पैदल यात्रा द्वारा तीर्थों के दर्शन पाना अधिक पुण्यदायक समझते हैं।

दक्षिण भारत के श्री द्वारिका, जगन्नाथ, रामेश्वरम्, बैंकटेश्वरम्, मदुराई आदि कितने ही प्रसिद्ध तीर्थ स्थल हैं जिनके लिए दक्षिण तथा उत्तर भारत के लोग समान भाव से आस्था रखते हैं। इसी प्रकार उत्तरी भारत के श्री बद्रीनाथ, अमरनाथ, मटन, गया, वैष्णोदेवी, ज्वालामुखी, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, हरिद्वार आदि अनेक तीर्थस्थल हैं जिनके लिए दक्षिण भारत के लोगों के मन में उत्तरी भारत के लोगों की अपेक्षा कोई कम श्रद्धा नहीं है। हजारों की संख्या में तीर्थ यात्री प्रतिदिन एक ओर से दूसरी ओर विचरण करते हैं। जगन्नाथ की छठी बद्रीनाथ में और बद्रीनाथ का कड़ा जगन्नाथ में चढ़ाने का क्या अभिप्राय है। इसका तात्पर्य है राष्ट्र की अखण्डता।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे तीर्थ ही राष्ट्रीय एकता का पोषण करते आए हैं। आज के कुछ नौसिखिए तीर्थयात्रा का उपहास उड़ाते हैं, तीर्थ यात्रियों पर छींटाकशी करते है एवं इस पवित्र कार्य को दकियानूसी विचारों की संज्ञा देते हैं। मैं समझती हूं वह संभ्रान्त हैं, वास्तविकता से बहुत दूर हैं। उन्हें तीर्थ यात्रा के महत्व का पता ही नहीं कि यह हमारे लिए कितनी उपयोगी है।

राष्ट्र की एकता को सुरक्षित रखने के लिए तीर्थ यात्रा को प्रोत्साहन देना हमारी प्रान्तीय सरकारों, भारत सरकार तथा हर भारतवासी का कर्तव्य है।

ओं ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निर्षङ्गिणः।
तेषां ँ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि॥ (ऋग्वेद)

ग्राम व डाकघर–नलेटी, द्वारा–नैहरनपुखर,
तहसील देहरा, जिला कांगड़ा

कांगड़ा घाटी के मेले

—रतनलाल चौधरी 'प्रभाकर'

यूं तो हर क्षेत्र में मेलों का आयोजन होता है। इन मेलों में कुछ क्षेत्रीय विशेषताएं होती हैं, तो कुछ धार्मिकता लिए होते हैं। तो कुछ क्षेत्रों में, समन्वय भावना तथा मनोरंजन लिए होते हैं। मेलों एवं त्योहारों के आयोजनों का सम्बन्ध हमारी संस्कृति तथा सभ्यता से नीर-क्षीर रूप में में जुड़ा हुआ है।

चैत्र महीने को विक्रमी संवत का प्रथम महीना कहा गया है। वसन्त ऋतु अपनी बाल्यावस्था को लांघ कर यौवनावस्था में पदार्पण करती है। चारों ओर हरियाली लिए हुए गेहूं, अलसी तथा सरसों के खेत मानों सारी धरती को ही स्वर्णमयी बना डालना चाहते हैं। किसानों के हृदयों में उत्साह के मेघ उमड़ते हैं। तरूण तथा तरूणियों की रगों में नव रक्त का संचार होता है।

चैत्र महीने में होली का त्योहार होता है इस त्योहार के उपलक्ष में एक मेला पालमपुर से दो मील पश्चिम की ओर घुघर नामक स्थान पर आयोजित किया जाता है। यह मेला चार दिनों तक चलता है। मले में और तो सभी विशेषताएं एक जैसी ही होती हैं, परन्तु इस मेले में एक नई विशेषता झांकियां होती हैं। जिसे स्थानीय लोग 'डोला' कहते हैं। यह डोले धार्मिक झलकियां प्रदर्शित करते हैं। इन झांकियों 'डोले' के पात्र इतने सधे हुए हाथों से सजाए जाते हैं, मानों हम राम, कृष्ण, लक्ष्मी, शिवजी आदि को साक्षात रूप में देख रहे हों। इन झांकियों में तीन स्थानीय क्षेत्रों का मुकाबला होता है। घुघर, बन्दला, पालमपुर इन तीनों स्थानों की एक-एक झांकी होली के प्रथम दिन निकाली जाती है। झांकी के आगे क्षेत्रीय वाद्यों से सुसज्जित वाद्यकार वाद्य बजाते हुए चलते हैं। उनके पीछे हनुमान जी अपना मुखौटा लगाए हुए हाथ में गदा तथा शरीर पर सिंदूर का लेपन किये हुए मस्त होकर नाचते हुए चलते हैं। झांकी के डोले को दस बारह व्यक्तियों ने कन्धों पर उठाया होता है। यह डोले मेले के स्थान पर सायं काल में प्रदर्शन के लिए लाए जाते हैं। लोग बड़ी श्रद्धा से इनका दृगपान कर उन झांकियों की कलाकृतियों का मन ही मन मूल्यांकन कर लेते हैं। इस प्रकार दो-दो झांकियां तीनों क्षेत्रों की दूसरे दिन निकाली जाती हैं। तथा तीसरे दिन तीन-तीन निकलती हैं। इन झांकियों को देखकर मन गद्-गद् हो उठता है। यह कला का एक नमूना होता है। इतनी मौलिकता अन्य किसी क्षेत्र की झांकियों में आज तक देखी नहीं गई है। मेले का जमाव दस से पन्द्रह हजार के बीच होता है। इस मेले की तुलना अमृतसर की दिवाली तथा कुल्लू के दशहरे से की जाती है।

चैत्र माह के पांच प्रविष्ठे को परौर नामक स्थान पर कुश्तियों का आयोजन किया जाता है। जिसे क्षेत्रीय लोग 'छिज' कहते हैं। परौर पालमपुर से नौ मील पश्चिम की ओर पठानकोट मण्डी सड़क पर स्थित है। यह मेला भी तीन दिन चलता है। इस मेले में कुश्तियां लड़ने के लिए पंजाब,

हरियाणा, राजस्थान आदि स्थानों से पहलवान आते हैं। स्थानीय युवक भी इसमें बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते हैं। यह मेला समन्वय भावना, मनोरंजन, तथा शक्ति प्रदर्शन का प्रतीक है। इस मेले में लाखों रुपयों का व्यापार होता है। चैत्र तथा वैशाख में कई अन्य स्थानों पर कुश्तियों 'छिजों' का आयोजन किया जाता है। इनमें लिदबड़ (नगरोटा बगवां), दैहण (मारण्डा), भेड़ू (थुरल), सलयाण (अन्दरेटा शोभासिंह कलाकार का कला स्थान), टाण्डा (पालमपुर), यह सभी मेले तीन से चार दिनों तक चलते हैं। कुश्तियां इन मेलों का मुख्याकर्षण है।

ज्येष्ठ माह में भवारना नामक स्थान पर 'भेखाशाह' का मेला होता है। इस मेले में मेले की सभी विशेषताओं के अतिरिक्त पशुओं का क्रय विक्रय भी होता है। मनोरंजन के अनेक साधन हिमाचल सरकार द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं। यह मेला भेखाशाह नामक किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की यादगार में आयोजित किया जाता है। यह मेला भी तीन दिनों तक चलता है। मेले का जमाव आठ दस हजार के मध्य में होता है। इसके अतिरिक्त दस ज्येष्ठ को ठाकुरद्वारा नामक स्थान पर (मारण्डा के निकट) पालमपुर से चार मील दक्षिण की ओर एक धार्मिक एक दिवसीय मेले का आयोजन किया जाता है। श्रद्धालु ठाकुरद्वारा मन्दिर के दर्शन कर अपनी नई फसल का अनाज चढ़ावे के रूप में चढ़ाते हैं।

बाबा सिद्ध का एक दिवसीय मेला हाड़ माह के तीन प्रविष्ठे को भगोटला नामक स्थान पर आयोजित किया जाता है। यह स्थान पालमपुर से चार मील दूर नियुगल नदी के किनारे पर स्थित है। मेले का सम्बन्ध जहां तक मैं समझता हूं नाथ एवं सिद्ध साम्प्रदाय से है। क्योंकि वैदिक काल के उपरान्त जैन साम्प्रदाय तथा इसके बाद गुरु गोरखनाथ आदि सिद्ध साम्प्रदाय का प्रचलन हुआ यह सारे उत्तर भारत में फैला तथा कांगड़ा घाटी में भी इसके प्रमाण मिलते हैं। चूंकि जो भी कोई धार्मिक लहर जब उठती है तो कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं रहता। यह लहरें कुछ परिष्कृत कुछ विकृष्ठ तथा कुछ विकृत हो जाती हैं जैसे नाथों तथा सिद्धों में हीनयान तथा महायान बज्रयान आदि लहरें प्रस्फुटित हुई थीं। चूंकि इस मेले का सम्बन्ध धार्मिकता से है, इसलिए इसकी विशेषता भी अपनी ही है। कहते हैं प्राचीन काल में विरागलोक या विरागलोप तथा बाबा सिद्ध दो बाल साधु हुए इनमें विरागलोक या विरागलोप बड़ा था तथा बाबा सिद्ध छोटा था। यह पालमपुर के तीन मील नीचे बिन्द्रावन नामक स्थान के निकट एक गुफा में रहते थे। किसी बात पर दोनों भाईयों में झगड़ा हो गया। बड़े भाई ने छोटे भाई को गुफा में बन्द कर दिया। कहते हैं कि छोटे भाई ने इतने जोर की कूक मारी कि टनों भारी पत्थर फट गया जो अभी भी फटा हुआ है। छोटा भाई बाबा सिद्ध उस दरार से निकल भागा। वह भगोटला नामक स्थान पर एक चारागाह में जा पहुंचा यह स्थान धौलाधार पर्वत के ठीक नीचे है। यहां प्रतिदिन पास के गांव के ग्रामीण बालक गऊओं को चराने आया करते थे। बाबा सिद्ध बाल रूप में उन ग्वालों में सम्मिलित हो गए। दिन भर वह ग्वालों के साथ खेला करते तथा सायंकाल में वहीं कहीं अदृश्य हो जाते।

बाबा जी ने उन ग्वालों को एक कूहल का निर्माण करने का परामर्श दिया। ग्वाले प्रतिदिन अपने साथ लाई गई लाठियों से कूल्ह को खोदते। परन्तु वहां पानी तो था नहीं, कूल्ह का पूरा निर्माण हो चुकने के बाद बाबा जी ने एक स्थान पर अपने पांव की एड़ी घुमा कर पानी की धारा प्रस्फुटित कर दी। कूल्ह अब भी ग्वाल कूल्ह के नाम से जानी जाती है। इस बीच एक विचित्र

घटना घट गई बाबा जी गऊओं का दूध दिन में पी जाते थे, शाम को गऊएं दोगुना दूध देने लगीं। घर वाले जब ग्वालों से रहस्य पूछते तो वह बाबा जी की बात बताते नहीं थे। क्योंकि बाबा जी, ने मना कर रखा था। कई दिनों के उपरान्त रहस्य का पता चला तो गांव वाले बाबा जी की खोज में निकल पड़े बाबा जी तो दिखाई नहीं दिये परन्तु, आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि मैं बाबा सिद्ध हूं। मेरे लिए एक मन्दिर का निर्माण करो तुम्हारी गऊएं ऐसे ही खूब दूध देंगी। कुछ लोग इसे बाबा बालकनाथ का ही रूप मानते हैं। गांव वालों ने एक ऊंची पहाड़ी पर बाबा सिद्ध का मन्दिर बनवाया। उनकी पूजा अर्चना होने लगी। तब से हर वर्ष हाड़ के तीन प्रविष्ठे को इस मेले का आरम्भ हुआ। पालमपुर क्षेत्र में यह परम्परा है कि गाय की की प्रसूति के उपरान्त जब तक दूध बाबा सिद्ध की पिंडी पर उल्टाया नहीं जाता उस दूध का सेवन निषेध है। दही बनाकर खा लेंगे, परन्तु दूध नहीं पीते। हजारों की संख्या में श्रद्धालु दूध के लोटे, गड़वे लिए हुए सात-आठ मील की चढ़ाई चढ़कर बाबा जी के स्थान पर पहुंच कर दूध भेंट करते हैं। लौट कर मेला देखकर अपने-अपने घरों को लौट जाते हैं।

ज्येष्ठ माह में ही एक 'छिंज' कुश्तियों का आयोजन नगरी नामक स्थान पर किया जाता है। यह स्थान पालमपुर से दस मील दूर पालमपुर धर्मशाला (बरास्ता योल कैम्प) सड़क पर स्थित है। यह मेला भी तीन दिन चलता है। इस मेले की मुख्य विशेषता कण्डी के इलाके में बसे हुए गद्दी लोग हैं। जो चम्बा से आकर यहां स्थाई तथा अस्थाई रूप में बस गए हैं। गद्दी लोगों की वेश-भूषा भी विशेष प्रकार की होती है। यह ऊन का एक चोला घुटनों तक लम्बा, पहनते हैं। कमर में एक ऊन की बनी रस्सी पहनते हैं जिसे यह लोग 'डोरा' कहते हैं। यह पच्चीस-तीस फुट से भी लम्बी होती है। इस डोरे के कई लपेटे कमर में दिए होते हैं। सिर पर कई पागड़ी बांधते हैं तो कई ऊन की बनी लम्बी टोपी पहनते हैं। कमर में ही लोहे का एक टुकड़ा लटका रहता है। जिसे यह लोग 'रुणका' कहते हैं। एक विशेष प्रकार के पत्थर पर (जो रंग में सफेद होता है) इस लोहे के टुकड़े को टकराया जाता है जिससे आग की चिंगारियां निकलती हैं। यह चिंगारियां एक खास किस्म के सूखे घास से बनी रूई जैसी लुगदी पर डाली जाती है। इस लुगदी को 'भुजलू' कहा जाता है। इस लुगदी को आग लग जाती है। यह आग उत्पन्न करने का मुख्य साधन है। अधिकांश गद्दी लोग बांसुरी बजाते हैं। क्योंकि भेड़ बकरियां चराना इनका मुख्य व्यवसाय है। अपना खाली समय वह बांसुरी बजा कर व्यतीत करते हैं। गद्दी लोग शरीर के हृष्ट-पुष्ट, गोरे चिट्टे जवान होते हैं। यह लोग बहुत ही भोले भाले, विश्वासी, साहसी तथा मिलनसार होते हैं। इनकी स्त्रियां जिन्हें 'गद्दण' कहा जाता है। बहुत ही सुन्दर हृष्ट-पुष्ट शरीर, कर्मठ एवं साहसी होती हैं। इनका पहरावा छींट का या ऊन का लम्बा चोला है। कमर पर पुरुषों के समान ही डोरा पहनती हैं। सिर पर गोटे की किनारी वाली चन्नी पहनती हैं। विशेष पत्थरों की बनी मालाएं भी पहनती हैं।

उपर्युक्त जिस मेले का मैंने विवरण दिया है। इस मेले में गद्दी तथा गद्दणें मुख्य आकर्षण होते हैं। यह गद्दी तथा गद्दणें मिलकर नाचते-गाते हैं जैसे 'धारा ते आया वणजारा हो, सिरे पर वंगड़ी दा भारा हो। पान्नों तेरे हथ बड़े मोटे हो, वंगड़ी दे होए सत टोटे हो।' अर्थात् पहाड़ से बंजारा आया हुआ है, इसके सिर पर चूड़ियों की गठड़ी है। पान्नों नामक युवती को बंजारा चूड़ियां चढ़ाने लगता है परन्तु उसके हाथ मोटे होने के कारण चूड़ियों के सात टुकड़े हो जाते हैं। अर्थात चूड़ियां चढ़ती नहीं हैं।

इन लोगों में विशेषकर एक प्रवृति जोर पकड़ती जा रही है और वह है शराब का पानी पीकर झगड़ा न हो ऐसी सम्भावना तो कभी हो ही नहीं सकती। जहां शराब होगी वहां अनैतिकता तो अवश्य होती ही है। चूंकि, यह लोग भ्रमण प्रिय हैं तथा ठण्डे इलाके के रहने वाले हैं, इसलिए भी इनमें यह प्रवृति पाई जाती है। कांगड़ा के इलाके में लुगड़ी, झोल, चाटकी, सूर यह सभी मादक पेय हैं। इनका सेवन भी यह लोग खूब करते हैं। इनकी स्त्रियां मादक पदार्थों का सेवन नहीं करतीं। विवाह शादियों में तो बकरा तथा शराब के बिना तो यह लोग रह ही नहीं सकते। फिर भी इनकी शादियां देखने योग्य होती हैं। स्त्रियों तथा पुरुषों का मिलकर नाचना तथा गाना देवलोक का दृश्य प्रस्तुत करता है।

कृष्ण जन्माष्टमी से दस दिन पूर्व गूगा नामक पीर का मेला सलोह नामक स्थान पर लगता है। यह स्थान पालमपुर से लगभग आठ मील नीचे (पठानकोट मण्डी रोड़ पर) अरला नामक स्थान से कच्ची सड़क से कोई दो मील नीचे उतर कर लगता है। चूंकि गूगा पीर के मन्दिर भारत में कई स्थानों पर हैं, तथा यह पीर ऐतिहासिक माना गया है। सलोह नामक स्थान पर इसका एक भव्य तथा विशाल मन्दिर है। यहां सांप के काटे का तथा जादू-टोना, वशीकरण आदि रोगों का उपचार होता है। कहते हैं, सांप का काटा हुआ व्यक्ति उस मन्दिर में पहुंच कर कोई भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ। यहां केवल मिट्टी तथा पानी का प्रसाद देकर इलाल किया जाता है। अर्थात् यहां का प्रसाद ही केवल मिट्टी तथा पानी है, मिट्टी इतनी स्वादिष्ट है कि कोई कह ही नहीं सकता कि हम मिट्टी खा रहे हैं, या कोई और वस्तु। जादू टोने से ग्रस्त नर-नारी यहां डेरा डाले रहते हैं। पूजा के समय यहां एक ढ़ोल बजाया जाता है। घण्टियां बजाई जाती हैं। संगल खड़काए जाते हैं। एक विचित्र प्रकार का सकून उस समय तारी हो जाता है। जादू टोने से ग्रस्त रोगी हिलने शुरू हो जाते हैं जिसे 'खेल' कहा जाता है। वह खेलता हुआ किसी दैवी-शक्ति द्वारा अपने रोग के बारे में स्वयं ही बताता है कि किस व्यक्ति ने मुझ पर जादू टोना कर रखा है। यह एक विचित्र बात है कि लोग मन्दिर की परिक्रमा चौबीसों घंटे कर तथा मिट्टी पानी का प्रसाद लेकर ठीक हो जाते हैं। यूं तो यहां चौबीसों घण्टे मेला लगा रहता है। परन्तु जन्माष्टमी के दिनों में तो मेला अपनी चर्म सीमा पर होता है। लोग यहां पर आम तौर पर चढ़ावा अनाज का ही चढ़ाते हैं। लोग गूगा पीर को साक्षात देवता मानते हैं। कहते हैं, एक बार एक व्यक्ति को सांप ने काट लिया जहरीला सांप था। वह व्यक्ति दौड़ कर मन्दिर पहुंचना चाहता था। उसका शरीर विष से फूल रहा था। इतने में वह मन्दिर के पास ही चौराहे पर पहुंचा वहां एक नौजवान जो नीले घोड़े पर सवार था मिला। सांप काटे व्यक्ति से पूछा कि 'कहां जा रहे हो' तो उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि 'मैं गूगा मन्दिर को जा रहा हूं' तब घोड़े पर सवार नौजवान ने कहा कि 'मन्दिर को यह रास्ता नहीं दूसरा रास्ता जाता है।' वह व्यक्ति भटक गया तथा थोड़ी देर में मृत्यु शय्या पर पड़े उसने सारी बात बताई। तभी एक व्यक्ति को 'खेल' आई तथा उसने कहा कि 'मैं स्वयं गूगा क्षत्री उस व्यक्ति को भुलाने वाला था क्योंकि इस व्यक्ति की मृत्यु इसका पीछा कर रही थी। मेरे स्थान पर यदि यह पहुंच जाता तो यम तथा मुझ में युद्ध हो जाता क्योंकि मेरे स्थान पर पहुंच कर सांप का काटा मर नहीं सकता।

गूगा क्षत्री की कहानी बड़ी ही मनोरंजक है। यहां जोगी लोग जन्माष्टमी से दस-पन्द्रह दिन पहले इस गीतों भरी कहानी को गाना शुरू कर देते हैं। यह लोग नाथ साम्प्रदाय के हैं। तन्त्र-मन्त्र

को जानने वाले मृत्यु होने पर ये मुर्दे को दफनाते हैं । वैसे यह अनुसूचित जाति के हिन्दू हैं । कहानी इस प्रकार बताई जाती है कि किसी राजा की दो रानियां थीं काछलां तथा बाछलां नाम से, उनके कोई सन्तान नहीं थी । गुरु गोरखनाथ जी उस राज्य में नौ लाख शिष्यों समेत आ पहुंचे । उन्होंने बाग में डेरा डाल दिया । बाग वर्षों से सूखा पड़ा था । कुएं सूखे थे, वृक्ष सूख चुके थे । गुरु जी के आते ही बाग हरा भरा हो गया तथा कुओं में पानी भर आया । गुरु जी ने अपने शिष्यों को भिक्षा लेने महलों में भेजा । रानियों ने अशर्फियों से उनके भिक्षा-पात्र भर दिए । शिष्य गुरु के पास पहुंचे तो गुरु क्रुद्ध हुए कि साधु को अशर्फियों से क्या काम ? खाओ तुम अशर्फियां । यह कह कर स्वयं गुरु गोरखनाथ भिक्षा-पात्र लेकर राजमहल में गए रानियों ने सारे राजकोष को ढोकर उस तूम्बड़ी में डाल दिया । परन्तु वह नहीं भरी अन्त में गुरु जी ने आटे की चुटकी लाने को कहा आटा तूम्बड़ी में डालते ही तूम्बड़ी आटे से भर गई । राजकोष का धन राज कोष में चला गया ।

यह चमत्कार देख एक रानी गुरु की सेवा करने नित प्रति बाग में जाने लगी । वह तन-मन से गुरू की सेवा करती । कई वर्षों बाद गुरु जी ने प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा । तब रानी ने सन्तान की मांग की । गुरु जी ने कहा कि कल तुम्हें वरदान दे दिया जायेगा । यह बात दूसरी रानी को पता चल गई । वह प्रातः ही उठी और धोखे से वरदान लेने चली गई । चूंकि वह दोनों रानियां सगी बहिनें थीं शकल सूरत से एक जैसी, गुरु जी भी धोखे में आ गए तथा दूसरी रानी को वरदान दे दिया । जब असली सेवादार रानी पहुंची तो गुरु जी क्रोधित हो उठे कि रानी लालच में आकर मुझ से कुछ और मांगने आई है । गुरु जी ने अपना त्रिशूल धरती पर मारा तथा पाताल लोक को उतर गए, रानी यथा की यथा खड़ी रह गई क्योंकि उससे धोखा हो गया था । कहते हैं कि वह कई दिनों तक वहां खड़ी रही । बाम्बी उसके शरीर को जकड़ने लगी । कौए उसका मांस नोचने को आते तब वह उन कऊओं को कहती कि मेरी दो चीजें नहीं खानी हैं, एक तो मेरे दो नयन जिन से मैंने गुरु जी के दर्शन करने हैं तथा दूसरी जिह्वा जिससे मैंने गुरु जी से दो बातें करनी हैं । वह जब रोती तो उसके आंसू पाताल लोक में आग के अंगारे बन कर गुरु जी के आसन को जलाने लगे । गुरु जी विचलित हो उठे कि यह क्या हो रहा है । वह अन्तरध्यान हुए तथा उनको पूरी बात का पता चला कि वास्तविकता क्या है । वह दौड़े हुए उस स्थान पर आए । देखा रानी यथा स्थान खड़ी गुरु जी की प्रतीक्षा कर रही है । गुरु जी ने रानी की बाम्बी हटाई, उसे नहलाया धुलाया, फिर कहा कि इस समय मेरे पास वरदान देने के के नाम से कुछ भी नहीं है । मेरी झोली में देखो यदि कुछ है तो निकाल लो । रानी ने झोली में हाथ डाला तो एक धूप की गठिया हाथ लगी । गुरु गोरखनाथ जी ने रानी को कहा कि इस गठिया को अग्नि पर रख कर निकलने वाले धुएं को अपने शरीर से छुआना तुझे एक प्राक्रमी तथा वीर पुत्र उत्पन्न होगा जो नागों का नाश करने वाला तथा सदा अमर रहेगा । एक पुत्री भी उत्पन्न होगी । तुम्हारे घर जो नीली घोड़ी है उसे भी एक सुन्दर घोड़ा उत्पन्न होगा । जो तेरे पुत्र का साथी तथा रक्षक होगा । दूसरी रानी को शाप दिया कि उसे निकम्मी सन्तानें उत्पन्न होंगी । ठीक दसवें महीने रानी ने एक पुत्र तथा एक पुत्री को जन्म दिया । यह पुत्र 'गूग्गा क्षत्री' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसी प्रकार नीली घोड़ी ने भी सुन्दर घोड़े को जन्म दिया । बाल्यावस्था में ही ईर्ष्या वश दूसरी रानी ने नागों की सहायता से बालक को मार डालने का षड्यन्त्र रचा, परन्तु विफल होकर नाग भाग गए । यह गौड़ बंगाल भी गए जिसे उन दिनों में जादू टोने का गढ़ माना जाता था ।

वहां भी उन्होंने विजय प्राप्त की । इनकी मृत्यु भी युवावस्था में ही हुई । कहते हैं एक बुढ़िया की गाय को बूचड़ हांक कर ले जा रहे थे । उस बुढ़िया ने 'गूग्गा क्षत्री' को सहायता तलब की । 'गूग्गा-क्षत्री' दौड़े हुए गए तथा बूचड़ों से लड़ने लगे । उन्होंने काफी बूचड़ों को मौत के घाट उतार दिया परन्तु स्वयं का सिर भी धड़ से अलग हो गया फिर भी वह बिना सिर ही लड़ते रहे । कुछ स्त्रियों ने 'हुंकार' दिया कि देखो बिना सिर का युवक लड़ रहा है । उसी समय शरीर धरती पर गिर पड़ा । मृत्यु के पश्चात् सारा परिवार शोक में डूब गया सबके चेहरे मुरझा गए परन्तु उनकी पत्नी का चेहरा नहीं मुरझाया । रहस्य जाना तो पता चला कि 'गूग्गा क्षत्री' रात्रि को पत्नी के पास आते हैं । वह गोबर का लेपन करती जिसे 'मंदलू' कहते हैं । जब तक यह लेपन गीला रहता वह पत्नी के पास बैठकर बातें करते सूखने पर अदृश्य हो जाते । पत्नी को सास तथा नणद ने सलाह दी कि लेपन में तेल डाल दिया जाए ताकि हम अधिक समय तक 'गूग्गा क्षत्री' को बैठा सकें । अगले दिन प्रातः तक लेपन नहीं सूखा अतः उसके पश्चात् वह पत्नी के पास भी नहीं आए ।

इस प्रकार यह गीतों भरी कहानी अपने आप में विचित्र कहानी है । यह नाथ एवं सिद्ध साम्प्रदाय से सम्बन्धित है । जहां कहीं भी प्राचीन काल से कोई धार्मिक छाप लगी है, हम उसका उसी प्रकार आदर करते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी संस्कृति एवं सभ्यता इतनी उत्कृष्ठ एवं परिष्कृत है कि हम माला के मनकों के समान एक लड़ी में पिरोए रहते हैं ।

इसी प्रकार हाड़ महीने में ही बैजनाथ नामक स्थान पर प्रति सोमवार को शिव मन्दिर में मेले लगते हैं । बैजनाथ को पुराने हिमाचल का प्रवेश द्वार कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी क्योंकि यह स्थान कांगड़ा घाटी तथा पुराने हिमाचल का सीमा बंटन करता है । यहां से थोड़ा ऊपर घट्टा नामक स्थान पर ही सीमा है । यह शिव मन्दिर अपने आप में प्राचीन कला का सुन्दर नमूना है । कहते हैं, जब पांडवों को बारह वर्ष का वनवास दुर्योधन द्वारा दिया गया तब पाण्डव कांगड़ा एवं कुल्लू घाटी में विचरण करते रहे । बैजनाथ के स्थान पर इन्होंने शिव मन्दिर की स्थापना की तथा मनाली में हिडम्बा नामक स्त्री से घटोत्कच नामक प्राक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ । यह भीमसैन का पुत्र माना गया है । मनाली में हिडम्बा का मन्दिर अब भी स्थित है । महाभारत के युद्ध में घटोत्कच के प्राक्रम तथा शूरवीरता का विवरण मिलता है । इस प्रकार सन्देह की कोई भी गुंजाईश बाकी नहीं रहती कि यह मन्दिर पाण्डवों ने ही बनवाया है । इस ऐतिहासिक मन्दिर को देखने के लिए पर्यटक देश तथा विदेश से आते हैं । बैजनाथ एक रमणीय स्थान है । कांगड़ा घाटी का दृगपान यहां से खड़े होकर किया जा सकता है । बिनवा खड्ड के किनारे बसा हुआ यह नगर रेल तथा मोटर मार्ग से जुड़ा हुआ है । यहां से एक मील नीचे उतर कर पपरोला बाजार है यहां ही रेलवे स्टेशन भी है ।

हाड़ महीने में ही हर मंगलवार को गढ़ा नामक ऊंची पहाड़ी पर 'भाव भीनी' देवी का मन्दिर है, यहां मेलों का आयोजन होता है । यह एक ऐतिहासिक स्थान है । यह स्थान परौर नामक स्थान से छः या सात मील ऊपर (धौलाधार पर्वत की ओर) कच्ची सड़क से जुड़ा हुआ है । यह एक पहाड़ी है जोकि दस × बारह मील के लम्बे चौड़े व्यास में फैली हुई है । चील के पेड़ों से सुसज्जित अपने आप में रमणीय स्थान है । इस पहाड़ी पर चढ़ कर समस्त कांगड़ा घाटी का दृश्य देखा जा सकता है । यह पहाड़ी पालमपुर तथा कांगड़ा तहसीलों का विभाजन भी करती है ।

यह एक ऐतिहासिक स्थान है। इसका प्रमाण है, मन्दिर के पास ही टूटे हुए किले के खण्डहर तथा दूसरे अवशेष। किले की एक दीवार अभी भी खड़ी है तथा गोलियां आदि दागने के लिए तिरछे सुराख अब भी ज्यों का त्यों हैं। किले की दीवार के अन्दर एक कुंआ है। जो खण्डहरों से भर गया है। फिर भी दस पन्द्रह फुट गहराई रखता है। मेले के लिए जल यहां से ही उपलब्ध कराया जाता है।

इस किले के बारे में मैंने जानकारी प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु कोई भी उचित जानकारी नहीं मिल सकी। यह शोध का विषय है कि किला कब बना तथा किस ने बनवाया ? परन्तु इतना तो मैं अवश्य जानता हूं कि किले के पास देवी का मन्दिर होना इस बात का प्रतीक है कि यह किला किसी राजपूत राजा ने ही बनवाया है क्योंकि राजपूत देवी के पुजारी थे तथा हैं।

जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूं कि इस स्थान पर खड़े होकर पूरी कांगड़ा घाटी का अवलोकन किया जा सकता है, इस लिए प्राचीन काल में यह स्थान महत्वपूर्ण रहा होगा। प्राचीन काल में यह घाटी विदेशी आक्रमणकारियों का शिकार रही है। महमूद गजनवी ने नगरकोट कांगड़ा पर आक्रमण किया था। सिक्खों तथा गोरखा सेनाओं ने भी इस घाटी को तहस नहस किया था यह सब बातें इतिहास में मिलती हैं।

उपर्युक्त बताई गई पहाड़ी के नीचे 'चामुण्डा' देवी का मन्दिर है। यहां सावन महीने में मेले लगते हैं। यह एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। कहते हैं महर्षि वेद व्यास का यहां आश्रम था। यहां उन्होंने घोर तपस्या की, अनमोल रचनाएं हमारे लिए लिखी तथा मन्दिर की स्थापना भी उसी समय हुई। मेले में प्रकाण्ड पण्डित सम्मिलित होकर चौबीसों घण्टे वेदों के मन्त्रोच्चारण करते हैं। हजारों की संख्या में श्रोतागण इस धार्मिक शुभावसर पर उपस्थित होकर अपने जीवन को सार्थिक बनाते हैं। सचमुच ही यह समारोह प्राचीन एवं वैदिक सभ्यता का दृश्य प्रस्तुत करता है। यह समारोह हर वर्ष नियत समय पर आयोजित किया जाता है। यहां नगरोटा बगवां रेलवे-स्टेशन पर उतर कर पहुंचा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कांगड़ा, ज्वालामुखी, चिन्तपुरनी आदि स्थानों पर नवरात्रों में 'माता' के मेले आयोजित किए जाते हैं। भारत भर से श्रद्धालु आकर इन मेलों में शामिल होते हैं। लोग उमड़े चले आते हैं, इस धरती की ओर। कितनी सामंजस्यता समन्वयता होती है कि मन गद्‌गद हो उठता है। इस प्रकार यदि कांगड़ा घाटी को 'देव घाटी' कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

हि०प्र० राजकीय मुद्रणालय,
शिमला – १७१ ००३।

सोमसी

प्राचीन नगर पांगणा

—सुखराम हिंगोराणी

करसोग से २५ कि०मी० की दूरी पर करसोग मण्डी रोड़ पर स्थित पांगणा नामक गांव है। समुन्दर तल से करीब ४५०० फुट की ऊंचाई पर यह एक प्राचीन तथा ऐतिहासिक नगर है।

खड्ड के किनारे बसा यह इस घाटी का सबसे बड़ा सुन्दर तथा रमणीक गांव है। इस प्राचीन गांव में हर प्रकार की आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध हैं।

बिजली, पानी, सड़क जैसी सब सुविधाएं प्राप्त इस गांव के लिए जिला मुख्यालय मण्डी से रोज तीन बसें चलती हैं तथा शिमला से दो बसें चलती हैं।

यहां कई सरकारी कार्यालय हैं जिनमें लोक निर्माण विभाग, विद्युत विभाग तथा वन विभाग प्रमुख हैं। बच्चों की शिक्षा के लिए हाई स्कूल भी है।

बागवानी विभाग ने एक आधुनिक सेब का पौध तैयार करने तथा बागबानों को प्रशिक्षण देने के लिए केन्द्र खोला है जिससे सारे क्षेत्र को बड़ा लाभ पहुंच रहा है।

पांगणा पंचायत एक उन्नतशील पंचायत है जो इस क्षेत्र की उन्नति के लिए रात-दिन प्रयत्नशील है। इस पंचायत ने क्षेत्र में कई प्रगति के कार्य किए हैं।

इस क्षेत्र की उपज गेहूं, चावल तथा मक्की आदि है। यहां जो सबसे विख्यात तथा आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने का साधन है वह है यहां की स्लेटों की खानें। जहां बड़ी मात्रा में स्लेट निकाले जाते हैं। पांगणा के स्लेट सुन्दर तथा मजबूत हैं जो बड़ी दूर-२ तक बिकते हैं। इस उद्योग से यहां की जनता को बड़ा लाभ पहुंचता है तथा हिमाचल सरकार को भी बड़ी आय होती है।

कहते हैं किसी जमाने में सुकेत राज्य की राजधानी इसी पांगणा गांव में थी जो बाद में यहां से सुन्दरनगर को ले जाई गई।

राजा दुष्टनकुन्दन सैन यहां राज्य करते थे। राजा का एक सुन्दर तथा विशाल महल था। महल के दस भवन थे जो कि गांव के एक किनारे पर छोटी सी पहाड़ी पर बने हुए थे। इन दस भवनों के बीचोंबीच ग्यारहवां भवन महामाया के मन्दिर का था।

सामने के भवन राज्य का काम काज चलाने तथा राजा के रहने के लिए प्रयोग किये जाते थे। पिछले भाग के भवनों में रानियां, राजकुमारियां तथा उनकी दासियां रहती थीं।

महल के चारों ओर किलेनुमा दीवार थी जो कि काफी ऊंची थी। महल के अन्दर प्रवेश करने के लिए एक विशाल दरवाजा था जिसे स्थानीय भाषा में परोड़ कहते हैं। उस विशाल द्वार तक पहुंचने के लिए गांव से साठ पौड़ियां बनी हुई थीं।

परौड़ विशाल तथा भारी थी। परौड़ खोलने के लिए यन्त्रों का प्रयोग किया जाता था। कहते हैं कि विशाल परोड़ खुलने तथा बन्द होने पर बड़ी आवाज पैदा होती थी जिससे सारे क्षेत्र में रहने वालों को परोड़ खुलने तथा बन्द होने का आभास होता था।

महल के दसों भवन गिर चुके हैं, बाकी महामाया का भवन आज भी सुरक्षित है। सन् १९५२ तक महल के कुछ भवन स्पष्ट दिखाई पड़ते थे। अब उनके स्थान पर विश्राम-गृह तथा डिस्पेन्सरी के भवन देखने को मिलते हैं। बाहरी दीवार भी अब गिर चुकी है।

महामाया का मन्दिर, जो कि पांगणा आसन भगवती के नाम से विख्यात है, के विषय में सुना जाता है कि इस मन्दिर की स्थापना पांडव अंगनाओं ने की थी। उन्हीं के नाम पर इस नगर का नाम पांगणा रखा गया था।

इस मन्दिर में विशाल मूर्ति महामाया अर्थात् माता पार्वती तथा भगवान शिव की एक अष्ट धातु के बहुत बड़े सिंहासन पर स्थापित थी। सिंहासन चार भागों में था जिन्हें इकट्ठा रखने पर एक ही दिखाई पड़ता था।

विशाल सिंहासन पर ६४ योगनियां की मूर्तियां बनी हुई थीं तथा ७१०० वाहन अंकित थे। कहा जाता है कि सन् १९४२–४३ में सुकेत के महाराजा लक्ष्मण सैन जो मूर्तियां तथा सिंहासन यहां से उठा कर सुन्दरनगर ले गए थे तथा वहां पर महामाया के नये मन्दिर की स्थापना करवा कर मूर्तियां वहीं स्थापित की गई हैं।

अब इस प्राचीन मन्दिर में एक छोटी सी मूर्ति है जिस की प्रति दिन पूजा की जाती है। सन् १९७५ में यहां के निवासियों ने महामाया का एक पहाड़ी रथ तैयार करवाया है। इस रथ को मेले के समय बाहर निकाला जाता है।

मन्दिर में महामाया का एक विशाल खण्डा (शस्त्र) भी था जिस के विषय में कहावत है कि उस खण्डे में अपार शक्ति थी। मां पार्वती के इस शस्त्र की भी प्रति दिन पूजा की जाती थी। कुछ समय पूर्व यह खण्डा मन्दिर से चोरी हो गया है।

आज भी यहां के लोगों में महामाया के प्रति अपार श्रद्धा है। इसे मनोकामना पूर्ण करने वाली देवी के रूप में पूजा जाता है।

प्रस प्राचीन महल के अन्तिम भाग में एक छोटा प्राचीन मां काली का मन्दिर है। इस मन्दिर में मां काली की मूर्ति स्थापित है। इसे प्रत्यक्ष समझा जाता है। इसमें अपार शक्ति मान कर इस मां काली को श्रद्धालु सर्व कामना पूर्ण करने वाली मानते हैं।

दुर्गा अष्टमी के दिन (दशहरा से दो दिन पूर्व) यहां विशाल मेला लगता है। मेले के दिन मां काली को भैंसे की बलि दी जाती है। कुछ वर्षों के लिए यहां भैंसे की बलि बन्द कर दी गई थी। जब से महामाया का नया रथ बनाया गया है उसी समय से भैंसे की बलि की प्रथा फिर से शुरू की गई है।

महल के अहाते में एक प्राचीन छोटा सा नाग मोहू का भी मन्दिर है।

सुकेत राज्य की राजधानी को पांगणा से सुन्दरनगर ले जाने के पीछे एक कहानी प्रचलित है। कहते हैं राजा दुष्टनकुन्दन सैन जी को कन्या का दोष लगा था इसी कारण राजधानी यहां से उठा कर सुन्दरनगर में बसाई थी। कन्या के दोष के विषय में प्रचलित कथा इस प्रकार है :—

उस समय 'नरोल' प्रथा (पर्दे में रहने की प्रथा) थी। रानियों तथा देइयों (राजकुमारियों) के महल में किसी भी पुरुष का आना जाना वर्जित था यदि किसी कारणवश किसी पुरुष को जनाना महल में जाना पड़ता था तो उसके साथ बात पर्दे के पीछे से की जाती थी।

राजा दुष्टनकुन्दन सैन की एक कन्या थी जो अपने महल में अपनी सखियों के साथ रहा करती थी। एक दिन राजकुमारी अपनी सखियों के साथ महल के आंगन में खेल रही थी। उनकी एक सखी ने सर पर पगड़ी बांधे पुरुष की भेष-भूषा धारण कर रखी थी।

दूर से वजीर की दृष्टि राजकुमारी तथा उसकी सखी पर पड़ी जो मरदाना भेष धारण किए थी। वजीर ने समझा राजकुमारी किसी पुरुष के साथ खेल रही है अतः उसने यह सूचना राजा को दी। राजा को इस समाचार से बड़ा क्रोध आया। राजा के आदेशानुसार दूर से राजकुमारी पर नजर रखी जाने लगी।

एक दिन फिर राजकुमारी अपनी सखियों के साथ खेल में व्यस्त थी। उसकी एक सखी सिर पर पगड़ी बांधे मरदाना भेष धारण किए खेल रही थी। इस घटना की राजा को सूचना दी गई। राजा ने अपनी आंखों से जब राजकुमारी को सुन्दर पुरुष के भेष में उसकी सखी को देखा तो राजा दूरी के कारण उस मरदाना भेष धारी लड़की को मरद समझा। राजा के क्रोध की सीमा नहीं रही। राजकुमारी से पूछा गया। राजकुमारी ने सच्ची बात बता दी लेकिन राजा क्रोध में था उन्होंने राजकुमारी की एक नहीं सुनी। राजकुमारी के ऊपर दोष लगाया गया तथा उसे बुरा भला कहा गया।

राजकुमारी निर्दोष थी। उससे अपने ऊपर लगाया गया कलंक सहन नहीं हुआ। राजकुमारी ने सिल वट्टे पर जहर पीस कर खा लिया। मरने से पूर्व उसने राजा से अनुरोध किया कि उसे इसी महल में दफनाया जाये और छः माह बाद खोद कर उसके शव को देखा जाए। यदि उसने (राजकुमारी ने) कोई पाप किया होगा तो उसके शव पर सड़ने के दाग होंगे और यदि निर्दोष होगी तो शव नहीं सड़ेगा।

राजकुमारी मर गई उसे वहीं महल के एक हिस्से में दफनाया गया। छः माह बाद जब शव निकाला गया तो उस पर किसी प्रकार का सड़ने का चिन्ह नहीं था। राजा को अपनी गलती महसूस हुई। उन्होंने अपने ऊपर कन्या की हत्या का दोष लिया। एक लोकोक्ति इस पर बनी है।

पांगणे बेंड़े सठ पैंड़ी सुम्राणे।
देई दब्राणें डेवे भीमसैने राणे॥

छः माह बाद राजकुमारी चम्पा का अन्तिम संस्कार किया गया। जिस स्थान पर राजकुमारी चम्पा का अन्तिम संस्कार किया गया उस जगह का नाम चन्दला रखा गया जोकि आज भी इस क्षेत्र की शमशान भूमि के रूप में प्रयोग की जाती है।

राजा ने अपने आपको दोषी माना तथा राजकुमारी चम्पा को देवी माना गया। जहां राजकुमारी छः माह तक दफनाया गया था वहां पर अपने आप एक चमेली का पौधा पैदा हो गया। चम्पा देई के नाम का एक मन्दिर उसी स्थान पर बनवाया गया तथा चम्पा देई की पूजा की जाने लगी।

आज भी चम्पा देवी की पूजा की जाती है। राजधानी यहां से सुन्दर नगर ले जाई गई है। फिर भी राजवंश के सदस्य कभी-कभी यहां आकर चम्पा देवी की पूजा करते हैं।

पांगणा अपने आप में अपना पूरा इतिहास लिए एक रमणीक स्थान है जो हर देखने वाले को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखता है।

खण्ड प्रचार कार्यकर्त्ता
करसोग जिला मण्डी

श्री किशोरी लाल वैद्य के लेख : 'कृषक कलाकार बी॰आर॰ भारद्वाज'
से सम्बन्धित (पृष्ठ 66, 68)

H.A.A.C.L. आर०एन० 28271/75

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि०प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3)1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

2. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

FORM IV

(See Rule 8)

1. *Place of Publication* ... **Simla.**

2. *Periodicity of Publication* ... **Quarterly.**

3. *Printer's Name* ... **Shri Munshi Ram.**
   Nationality ... **Indian.**
   (a) Whether a citizen of India ... **Yes.**
   (b) If a Foreigner, the country of Origin **N.A.**
   Address ... **Naveen Printing Press, 49-A, Main Market, Bilaspur (H.P.)**

4. *Publisher's Name* ... **Shri M.R Thakur.**
   Nationality ... **Indian.**
   (a) Whether a citizen of India ... **Yes.**
   (b) If a Foreigner, the country of Origin **N.A.**
   Address ... **Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Pari-Mahal, Simla-9.**

5. *Editor's Name* ... **Shri M.R. Thakur.**
   Nationality ... **Indian.**
   (a) Whether a citizen of India ... **Yes.**
   (b) If a Foreigner, the country of Origin **N.A.**
   Address ... **Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Pari-Mahal, Simla-9.**

6. *Names and addresses of individuals who own the newspaper and are partners or shareholders holding more than one percent of the Total Capital* **Himachal Kala, Sanskriti, Bhasha Academy, Pari-Mahal, Simla-9.**

I, M. R. Thakur, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

(Sd.) M. R. Thakur,
Secretary.

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परी महल, शिमला-9 द्वारा प्रसारित तथा 'नवीन प्रिंटिंग प्रेस', जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश) द्वारा मुद्रित।